हरिचरणदास कृत

मोहन लीला

लेखक—सम्पादक
पं० कृपाशंकर तिवारी
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

सहायक—सम्पादक
डॉ० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

भूमिका—लेखक
डॉ० सत्येन्द्र

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
पं० चैनसुखदास मार्ग, जयपुर–३

मूल्य दस रुपये

प्रकाशक रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
प० चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रथम संस्करण अक्टूबर १९७३

मुद्रक स्वदेश प्रिन्टर्स,
तेलीपाड़ा, जयपुर-३

विषय-सूची

हरिचरणदास कृत मोहन लीला की भूमिका

हरिचरणदास रीतिकाल के एक प्रमुख कवि और आचार्य हैं। इनका जन्म स० १७६५ मे हुआ तथा मृत्यु स० १८४४ के उपरान्त।

ये एक प्रकार से हिन्दी साहित्य के लिए एक नवीन उपलब्धि हैं क्योकि इनके ग्रन्थो पर कुछ चर्चा हाल ही मे हुई है। यों इनका उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने भी किया है। किन्तु इनकी एक कृति कर्णाभरण कोष का कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन और अध्ययन सबसे पहले डॉ० सत्यवती महेन्द्र ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी नाम माला साहित्य' मे सन् १९६० मे किया था। और अब सन् १९७१ मे डॉ० कुसुम बॅंराठी ने इनके प्राप्त सभी ग्रन्थो का विस्तृत अध्ययन करके एक शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय की पीं—एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया और इस पर इन्हें यह उपाधि उपलब्ध हो गयी है। इस प्रकार अब हरिचरणदास ने हिन्दी विद्वानो का समुचित ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इनके रचे १२ ग्रन्थो मे से 'मोहन लीला' एक ऐसा ग्रन्थ था जिसकी प्रतियाँ ऐसा अनुमान था कि नही मिल रही हैं; किन्तु काफी शोध के उपरान्त डॉ० कुसुम बॅंराठी को इसकी एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे होने की सूचना मिली। प्रो० कृपाशकर तिवारी जी ने इस 'मोहन लीला' की एक प्रति बहुत पहले ही प्राप्त करली थी। इस प्रकार अभी तक जहाँ तक हमे पता है इसकी दो प्रतियाँ ही मिलती हैं। इसलिए प० कृपाशकर तिवारी जी ने इस मोहन लीला' को प्रकाशित करने का सकल्प किया। प० कृपाशकर तिवारी जी राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं, और राजस्थान विश्वविद्यालय के विज्ञान सकाय मे हिन्दी विभाग के स्थानीय अध्यक्ष भी हैं। वे जहाँ साहित्य-शास्त्र मे रुचि रखते हैं वहाँ उनकी आन्तरिक वृत्ति भक्तिमय भी है। यही कारण है कि इन्होने अपने इतन महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह मे से इसे प्रकाशनार्थ चुना। मोहन लीला मे भक्ति के साथ काव्य शास्त्रीय प्रतिभा का अद्भुत मिश्रण प्रस्तुत हुआ है। हम प० कृपाशकर तिवारी के सकल्प का अभिनन्दन करते हैं।

मोहन लीला को देखकर डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी के इस अभिमत की ओर ध्यान जाता है कि हिन्दी मे रीतिकाल को भक्तिकाल से पृथक नहीं

किया जा सकता। जिसका अर्थ है कि रीतिकाल के सभी कवि भक्त थे। हरिचरणदास ने रामायण सार और भागवत प्रकाश ये दो ग्रन्थ और इस प्रकार के लिखे हैं जिन्हे हम भक्ति भावना से प्रेरित मान सकते हैं। शेष ग्रन्थों मे से तीन ग्रन्थ तो काव्यशास्त्र विषयक हिन्दी के प्रमुख ग्रन्थों की टीका से सम्बन्धित हैं—रसिक प्रिया की टीका, कवि प्रिया की टीका, भाषाभूषण की टीका। बिहारी सतसई की एक प्रसिद्ध टीका भी इन्होने लिखी है। भाषा दीपक, सभा प्रकास और कवि वल्लभ इनके अपनी ओर से निजी आचार्यत्व को स्थापित करने वाले रसिकप्रिया, कवि प्रिया और भाषाभूषण की कोटि के ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त और दो नाममालायें—श्रुति भूषण और कर्णाभरण प्रस्तुत की।

इस प्रकार भक्ति, काव्य विवेचन और रीति स्थापन की त्रिवेणी हरिचरण दास के कृतित्व मे प्रवाहित दिखायी पडती है। इस त्रिवेणी मे भक्ति और कवि की धूप छांह मे प्रताप विरुदावली जैसा एक व्यक्तिगत कृतज्ञता का फूल भी तैरता हुआ दिखाई पडता है।

वैसे यह प्रश्न नहीं उठना चाहिये कि ये भक्त पहले हैं या कवि पहले हैं क्योंकि कवित्व के ताने मे भक्ति का बाना इस कवि के कृतित्व मे पिरोया हुआ है, किन्तु हम जब भक्ति और कवित्व के इस धूप-छांही मिश्रण की बात करते हैं तो हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन इतिहास के विशेषज्ञ आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[1] का यह कथन हमारा ध्यान आकर्षित करता है। "इस सम्बन्ध मे यह कह देना आवश्यक है कि भक्ति और शृंगार की रचनाओं के क्षेत्र भिन्न-भिन्न थे। शृंगारी कवि अधिकतर दरबारी थे। भक्त कवियों का सम्बन्ध दरबारो से बिल्कुल नही था। उनकी रचना वस्तुतः जनता हृत्तन्त्री की प्रतिध्वनि थी। पूर्वोक्त तथा अन्य बहुत से कवि दरबारो मे भी अपनी 'कविताई' का चमत्कार दिखा रहे थे।"

आचार्य मिश्र के इस सिद्धान्त से भक्ति का क्षेत्र दरबारी क्षेत्र से बिल्कुल दूर हो जाता है। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि दरबारी कवि तो क्या स्वय कितने ही दरबार भी बड़े भक्त हुए हैं तो इस सिद्धान्त के पुनर्वीक्षण की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। आचार्य जी ने यह कथन 'बिहारी' की भूमिका के प्रथम संस्करण मे स० २००७ मे लिखा होगा अर्थात आज से २२ वर्ष पूर्व। इसे मैं समझता हूँ कि इससे भी पूर्व से सिद्धान्त रूप से माना जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भी ऐसे प्रमाण उपस्थित थे जो इस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे एक प्रश्न चिह्न खडा कर देते थे। उदाहरणार्थ—*यह इतिहास के माध्यम से सभी जानते रहे हैं कि जोधपुर का घराना नाथ*

---

१. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद—बिहारी, पृ० १६

सम्प्रदाय का भक्त रहा है। महाराजा जसवन्तसिंह भी भक्त थे और उनकी एक रचना 'भाषा भूषण' को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ अन्य विषयों से सम्बन्धित है। सभी जानते हैं कि किशनगढ़ नरेश और उनकी रानियाँ वल्लभ सम्प्रदाय या निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्त रही है। नागरीदास जी तो राजपाट छोड़कर वृन्दावन मे जा बसे थे। जयपुर के नरेश भी किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हैं और महाराजा प्रताप सिंह तो 'ब्रजनिधि' के रूप मे प्रसिद्ध हुए। सवाई जयसिंह ने तो स० १७८० के लगभग एक वृहद धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था। जिसम वृन्दावन के सभी व्रज सम्प्रदायो को आदेश दिया गया था कि वे सम्प्रदाय की प्रामाणिकता सिद्ध करें।

> वृन्दावन के भक्ति सम्प्रदायो को अपनी मान्यताओं की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए विवश किया था। उसके लिए स० १७८० के लगभग आमेर मे एक वृहत् धर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया। राजा का आदेश था कि वृन्दावन के सभी भक्ति सम्प्रदाय अपने प्रतिनिधि भेजकर वहा अपने सम्प्रदायो की प्रामाणिकता सिद्ध करें। भक्ति सम्प्रदायी महानुभाव प्रेमाभक्ति के एकान्त उपासक थे। वे धार्मिक विवाद और शास्त्रार्थ के झंझट मे नहीं पडना चाहते थे किन्तु राजा के आदेश की अवहेलना करना भी सभव नहीं था। उस काल मे जिन भक्त सम्प्रदायो ने उक्त सम्मेलन मे भाग लेकर अपने सिद्धान्तों की प्रामाणिकता सिद्ध की थी वे सवाई राजा द्वारा पुरस्कृत हुए थे। जो वहा नही जा सके, वे राजा के कोप से बचने के लिए वृन्दावन ही छोडकर चले गये थे। इस प्रकार निष्क्रमण करने वालों मे उस काल के राधावल्लभीय धर्माचार्य गण प्रमुख थे। उन्हें कई वर्ष तक वृन्दावन से बाहर रहना पडा था और राजा के देहावसान होने के बाद ही वे अपने घरो को वापिस लौट सके थे।[१]

मीतल जी का उक्त उद्धरण भी इस बात की ओर सकेत करता हैं कि धर्म के विषय मे न तो राज्य ही उपेक्षावृत रहे थे और न जनता मे ही उसकी उपेक्षा थी। यह भी स्पष्ट है कि उस समय अधिकाश सम्प्रदाय भक्ति पर ही निर्भर करते थे। इस दृष्टि से यह आभास मिलता है कि रीतिकाल में भक्ति का अभाव तो था ही नहीं, उसकी उपेक्षा भी नहीं थी। इस भक्ति के साथ साथ ही काव्य कला और रीतिपरक रचनाएँ साथ-साथ चल रही थी। इसी के साथ-साथ समस्त हिन्दी क्षेत्र मे एक पुनराहरण जैसा परिवेश उपस्थित हो रहा

---

१ मीतल, प्रभु दयाल—व्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ० ५०२

था क्योकि इस काल मे सस्कृत के वाङ्मय से अनेकों महत्वपूर्ण ग्रथो का अनुवाद भी हो रहा था। सस्कृत ग्रथों का आधार इस काल के समस्त साहित्य और वाङ्मय के पृष्ठ पर दिखायी पडता है।

इसी सदर्भ मे हम यहा अपने 'ब्रज साहित्य के इतिहास' से एक उद्धरण देना समीचीन समझते हैं—'जिसे रीतिकाल कहा जाता रहा है, और जिसके सम्बन्ध म यह भी माना जाता रहा है कि इस काल म शृ गार रस की ही प्रधानता रही और इस चर्चा का प्रभाव यह होता है कि यह विश्वास कर लिया जाता है कि बस इस काल मे शृ गार रस की ही नदी बहती थी, और कवियो के आश्रयदाता घोर विलासी सामत थे, उस रीतिकाल मे राजस्थान मे रचित ब्रजभाषा साहित्य पर एक दृष्टि डालने से कुछ और ही चित्र खडा होता है। यह चित्र इस फलक से स्पष्ट होता है–(नीचे जो फलक दिया जा रहा है, वह सशोधित फलक है।) ब्रज साहित्य के इतिहास के फलक को श्री केदार लाल मिश्र ने सशोधित किया है। श्री केदार लाल मिश्र हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय के शोध छात्र हैं। 'राजस्थान मे हिन्दी साहित्य शास्त्र' विषय पर ये अनुसधान कर रहे है। इस सूची में उन्होन अपने अध्ययन अनुसधान के आधार पर सामग्री दी है। कितना अन्तर है। हमारे मूल फलक मे कुल ६८ कवि थे। इसमे १०६ हैं—४१ कवि अधिक ? कवियो की कुल रचना सख्या मूल मे ४६० थी, इसमे ८२६–३६६ अधिक। रीति ग्रथो का योग मूल मे ६२ था, इसमे १८६–१२४ अधिक। × × ×

कवि	काल-सवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र वद्ध, मुक्त)
१ बिहारी	१६६०-१७२०	जयपुर	१	१
२. नरहरिदास	१६४८-१७३३	जोधपुर	२	—
३. जान	†१६७१-१७२१	फतहपुर (शेखावाटी)	७५	१४
४. महाराज जसवतसिंह	१६८३-१७३५	जोधपुर	६	१
५. पेहरी	१६८८-१७१०	बूंदी	२	३
६. साईदास	१७०६	मेवाड़	१	—
७ डूंगरसी	१७१०	बूंदी	१	—
८. सूरदत्त	१७१६	अमरसर (शेखावाटी)	१	१
९. मतिराम	१७१६-४७	बूंदी	४	४(+२)
१०. कुलपति मिश्र	१७२०-६०	जयपुर	५२ (उपलब्ध १३)	२
११. वृन्द	१७२५-१७८०	जोधपुर (आगरा, किशनगढ)	६	२
१२. उदयचन्द	१७२६-६५	बीकानेर	३	१
१३. मानजी	१७३०-४०	मेवाड	२	१
१४. मुनि मान	१७३०-४६	बीकानेर	६	३
१५. रूपजी	१७३०	मेडता	३	३
१६. जनार्दन भट्ट	१७३०-१७५०	बीकानेर (जयपुर)	१०	२

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
१७.	सतीदास व्यास	१७३३ (उप०)	बीकानेर	१	१
१८.	महाराज अजीतसिंह	१७३५–१७८१	जोधपुर	२	१
१९	मीर मुन्शी माधोदास	१७४०	किशनगढ़	१	—
२०.	प्राण नाथ	१७४०–१७८१	कोटा	३	—
२१.	हरिनाभ	†१७४०	खंडेला (जयपुर)	१	—
२२.	देवीदास	१७४२ (उप०)	करौली	२	१
२३.	नन्दराम	१७५० (लगभग)	बीकानेर	१	१
२४.	द्वारिकानाथ भट्ट	१७५०	जयपुर	७	२
२५.	बुद्धसिंह	१७५२–१७८६	बूँदी	१	१
२६	लोकनाथ चौबे	१७५२–१७८०	बूँदी	२	-१
२७.	अभयराम सनाढ्य	†१७५४ (क० का०)	बीकानेर	१	१
२८.	सूरति मिश्र	१७५५–१८००	(आगरा) जयपुर, जोधपुर मेडता, बीकानेर	२३	८
२९.	नागरीदास	ज० १७५६ मृ० १८२१	किशनगढ	७७	२
३०.	जय गोविन्द बाजपेयी	१७६० (उप०)	जयपुर	१	१
३१.	नाजिर आनन्द राय	†१७६१		१	—
३२.	मुरली	१७६३–१७७५	मेवाड़	२	—

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
३३.	महाराजा राजसिंह	१७६३–१८०५	किशनगढ	३	—
३४.	हित वृन्दावन	१७६५	पुष्कर (किशनगढ़)	४२	—
३५.	देवर्षि कृष्ण भट्ट 'कलानिधि'	१७६५–१८१५	बूंदी, जयपुर, भरतपुर	१६	५
३६.	हरिचरणदास	१७६६–१८३५	किशनगढ	१३	३
३७.	प्रियादास	१७६९	जयपुर	१	—
३८.	वल्लभ (वृन्द पुत्र)	१७७०	किशनगढ	२	१
३९.	कृपा राम	१७७२	जयपुर	२	१
४०.	दयाल	१७७५	मेवाड़	१	—
४१.	जयकृष्ण	१७७६–१८२५	जोधपुर	३	—
४२.	भोज मिश्र	१७७७	बूंदी	१	१
४३.	रायशिवदास	१७८०–१८०९	जयपुर	६	४
४४.	जोधराज	१७८५ (पूर्व)	नीमराणा	१	—
४५.	सोमनाथ	१७८५–१८१३	भरतपुर	१५	२
४६	शिवराम	१७९०–१८०८	भरतपुर	२	१
४७	नन्दराम	१७९०–१८०२	मेवाड़	२	—
४८.	दलपति राय }	१७९०–१७९८	(महमदाबाद) उदयपुर	१	१
४९.	वंशीधर }				

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध मुक्त)
५०	महाराज सुजानसिंह	१७६०	भरतपुर	१	—
५१.	सुन्दर कुँवरि	१७६१–१८५१	किशनगढ	११	४
५२.	बेनी 'प्रसाद'	१७६५	उदयपुर	१	१
५३ ५४.	कुँवर कुशल कनक कुशल	१७६६ (लगभग)	जोधपुर (कच्छ)	१	—
५५	द्वारकानाथ भट्ट	१८०० (लगभग)	जयपुर	८	१
५६.	उम्मेद राम	ज० १८०० मृ० १८७८	जयपुर, अलवर	१३	४
५७	कन्हैया लाल भट्ट	१८०० (लगभग)	जयपुर	३	२
५७	सूदन	१८०२–१८१० (क० का०)	भरतपुर	१	—
५६	देवकर्ण	†१८०३	मेवाड	१	—
६०	उदयनाथ 'कवीन्द्र'	१८०४	बूंदी	२	१
६१.	गवरी बाई	१८१५	डूंगरपुर	१	—
६२.	भोलानाथ	१८१८–१८३०	(आगरा) भरतपुर, जयपुर	१६	७
६३.	महा० प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि'	१८२१–१८६०	जयपुर	२३	३
६४.	शोभा नाथ, शोभ	१८२५	जयपुर, भरतपुर	३,१	१

	कवि	काल-संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
६५.	रामनारायण 'रसराशि'	१८२७	जयपुर	१२	३
६६.	बाँकीदास	१८२८–१८९०	जोधपुर	२७	२
६७.	नगजी	—	सीकर	१	१
६८.	'जगदीश' भट्ट (जगन्नाथ)	१८२६–१८६५	जयपुर	१७	४
६९.	रसपुंजदास	१८३०	—	४	३
७०.	जनराज वैश्य	१८३३	जयपुर	३	१
७१.	गणपति 'भारती'	१८८५ (लगभग)	जयपुर	१२	६
७२.	उजियारे कवि	१८३७ (लगभग)	जयपुर, भरतपुर	२	२
७३.	देवेश्वर माथुर	१८३९	भरतपुर	१	१
७४.	महाराज मानसिंह	१८३६–१९००	जोधपुर	२४	—
७५.	दौलत (वृन्द वंशज)	१८४६ (क० का०)	किशनगढ़	२	२
७६.	चण्डीदास	१८४८–१८९२	बूंदी	५	—
७७.	पद्माकर भट्ट	१८४६–१८९०	जयपुर, उदयपुर	११	३
७८.	मुरलीधर भट्ट 'प्रेम'	ज० १८२०–मृ० १८७२	जयपुर, अलवर	३	२
७९.	रसिक गोविन्द	१८५२–१८९०	जयपुर (वृन्दावन)	१३	३

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रंथ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
८०	भोगीलाल (देव-वंशज)	१८५६ (क० का०)'	अलवर	२	२
८१	हरिनाथ	१८५७–१८८८	अलवर	२	१
८२	जवानसिंह 'ब्रजराज'	१८५७–१८९५	मेवाड	१	—
८३	श्री धरानंद (घासीराम)	१८६०–१९००	भरतपुर	६	२
८४	उत्तम चन्द भण्डारी	ज० १८३३ मृ० १८६४	जोधपुर	९	१
८५	दीनजी	१८६३–१८८८†	मेवाड (एक लिंग)	१	—
=६	गो० कृष्णलाल	१८७२	बूंदी	३	२
८७	रसनायक	१७७२	काम्यवन (भरतपुर)	१	१
७८	खुसराम (वृंद वंशज)	१८७४–१९२०	किशनगढ	२०	३
८९	मंडन भट्ट (कृष्ण भट्ट–वंशज)	१८७४–१८९०	जयपुर, बूंदी	२२	४
९०	गणेश चतुर्वेदी	१८७५ (लगभग)	करौली	५	२
९१	किशनजी	†१८७६	मेवाड	२	—
९२	चन्द्रशेखर वाजपेयी	१८७७–१९३२	जोधपुर, अलवर	६	२
९३	वागीराम]	१८८३	जोधपुर	२	—
९४	गाडूराम]				
९५	मोतीराम	१८८५	भरतपुर	२	१

	कवि	काल-संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध मुक्त)
९६	चैनराम	१८८५	जयपुर, शाहपुरा	६	१
९७	रसानन्द	१८८६	भरतपुर	१३	५
९८	कृष्ण कवि	१८९३	जयपुर	१	१
९९	कमल नयन 'रससिंधु'	१८९६ (लगभग)	बूंदी (गोकुल)	१	१
१००	चतुर्भुज मिश्र	१८९९	भरतपुर	१	१
१०१	शिवराम	१८९९	जोधपुर	१	१
१०२	गो० जगदीशलाल	१९००–१९५०	बूंदी	१८	२
१०३	विड़दसिंह 'माधव'	१९१४	अलवर	२	२
१०४	कान्ह कवि (लघु कान्ह)	१९१६	अलवर	१	१
१०५	गुलाबसिंह 'गुलाब	१९२५–१९५८	अलवर, बूंदी	३४	१०
१०६	कविराव बख्तावर सिंह	१९३३	उदयपुर	१२	२
१०७	महाराजा जवानसिंह 'नागधर'	१९३६	किशनगढ़	२	१
१०८	जयलाल (वृन्द-वंशज)	१९४०	किशनगढ़	४	१
१०९	जगन्नाथ चौबे	१९५० (क० का०)	बूंदी	५	१
				८२६	१८६

इसमे हमे कुल कवि १०६ मिलते हैं, जिन्होंने ८२६ के लगभग ग्रथ ब्रजभाषा मे लिखे। इन ८२६ ब्रजभाषा ग्रथों मे से केवल १८६ ऐसे ग्रथ हैं जो रीतिकाव्य की समस्त प्रवृत्तियों के अनुसार लिखे गये। नये अनुसधान मे और भी कवियो तथा ग्रथो का पता चल सकता है, और यह भी मान लेना चाहिये कि ऊपर का फलक प्रस्तुत करने मे और कुछ कवि अथवा ग्रथ छूट गये हैं। फिर भी जो रूप यहा प्रकट होता है, उसमे पारस्परिक अनुपात मे कोई बडा परिवर्तन नहीं मिल सकता। जो स्थिति राजस्थान की है वही सभी क्षेत्रो की मानी जा सकती है और उसमे साहित्य की प्रवृत्तियो की प्रकृति भी समान मानी जा सकती है।

इस तालिका से यह भी विदित होता है कि केवल रीति ग्रथ मात्र लिखने वाले कवि २४ हैं। और एक भी रीति ग्रथ न लिखकर मात्र अन्य विषयो पर लिखने वालो की सख्या २५ है। निष्कर्षत केवल रीति ग्रथ लेखक कुल लेखक सख्या के तीन प्रतिशत हैं और ऐसे लेखक भी जिन्होंने रीति ग्रथ लिखे ही नही तीन प्रतिशत हैं। इससे यह बात भी अमान्य हो जाती है कि इस युग मे रीति ग्रथ लेखन की ही प्रधानता थी।

'ब्रज साहित्य का इतिहास' के उद्धरण के पश्चात् अब हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास के षष्ठ भाग मे से एक अन्य रोचक उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

"असनी के ठाकुर कवि ने अपने आश्रयदाता काशी निवासी श्री देवकी नन्दन के नाम पर सतसैयावर्णार्थ टीका मे बिहारी का विस्तृत वृतात लिखा है। उसका साराश इस प्रकार है—'बिहारी नामक एक कुलीन विप्र ब्रज मे वास करता था। उसकी पत्नी कविता करने मे प्रवीण थी। राजा जयसिह से वृत्ति पाकर वह अपनी गृहस्थी चलाता था। एक बार जब जयपुर राजा के दरबार मे वृत्ति लेने गया तो उसने राजा को नई ब्याह कर लाई हुई पत्नी के प्रेमपाश मे फँसा पाया। राजा दरबार मे नहीं आते थे। निराश होकर बिहारी को खाली हाथ लौटना पडा। बिहारी ने यह समाचार अपनी पत्नी को सुनाया। उसने तत्काल 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल' वाला दोहा बनाकर बिहारी को दिया और फिर जयपुर वापस भेजा। दासी के द्वारा यह दोहा महाराज के पास भिजवाया गया। उसे पढकर राजा को प्रबोध हुआ और अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होने अजली भर मोहरें बिहारी को प्रदान की। साथ ही यह भी कहा कि यदि तुम इसी प्रकार दोहे बनाकर लाते रहे तो तुम्हे

सुनाया। पत्नी ने १४०० दोहे बनाकर और १४०० मोहरें प्राप्त की। उन्हीं मे से छाँटकर सात सौ की यह सतसई तैयार हुई। इस सतसई को लेकर पत्नि के कहने से बिहारी छत्रसाल महाराज के दरबार मे पहुँचे। सतसई उन्हे दिखाई गई। महाराज ने उसे परख के लिए अपने गुरु श्री प्राणनाथ जी के पास भेज दिया। साधु प्राणनाथ ने शृंगार पूर्ण सतसई को घृणास्पद समझा और वापस कर दिया। बिहारी अपना सा मुँह लेकर चले आये। घर आकर जब पत्नी से सब वृतान्त कहा तो पत्नी ने तत्काल बिहारी को छत्रसाल के पास वापस जाने का परामर्श देते हुए कहा कि महाराज से निवेदन करना कि सतसई की परीक्षा के लिए इसे प्राणनाथ की धार्मिक पुस्तक के साथ पन्ना के युगल किशोर जी के मन्दिर मे रख दिया जाय। जिस पुस्तक मे श्री युगल किशोर जी के हस्ताक्षर हो जाय वही पुस्तक प्रामाणिक मानी जाय। ऐसा ही किया गया और हस्ताक्षर बिहारी सतसई पर हुए। इस समाचार को सुनते ही बिहारी बिना दक्षिणा लिए सीधे अपनी पत्नी के पास चले आये और पत्नी को सब समाचार बताया। उधर बिहारी को न पाकर राजा ने हाथी, घोडे, पालकी, आभूषण आदि विपुल सम्पत्ति बिहारी के लिए भेजी। बिहारी की पत्नी ने सारी दक्षिणा वापस करके यह दोहा लिख भेजा।

तो अनेक औगुन भरी चाहै याहि बलाय।
जो पति सपति हू बिना जदुपति राखे जाय।

'एक और दोहा प्राणनाथ जी के पत्र के उत्तर मे' लिखा —

दूरी भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तार न काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चग रग गोपाल।

इन दोहो को पढकर महाराज छत्रसाल और प्राणनाथ बहुत लज्जित हुए और बहुत सा द्रव्य आदि भेजा। बिहारी की पत्नी पतिव्रता थी, अत उसने सतसई रचने का श्रेय स्वय नही लिया वरन् बिहारी के नाम से ही ग्रथ को प्रसिद्ध किया।[1]

इन उद्धरणो से एक तो यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि रीतिग्रथों से कम से कम ५-६ गुने अधिक ग्रथ रीतिकाल मे लिखे गये। दूसरे 'बिहारी सतसई' जैसे ग्रथो की प्रतिष्ठा धर्म ग्रथ के रूप में मानने की प्रवृति भी थी। 'बिहारी-प्राणनाथ' वाली घटना का उल्लेख और बिहारी सतसई पर युगल किशोर के हस्ताक्षर, 'रामचरित मानस' पर शिव के हस्ताक्षरो वाली किंवदती की पुनरावृत्ति है। यह बात आश्चर्य है कि वैष्णव ग्रथ 'रामचरित मानस' पर शिव के हस्ताक्षर हुए, और शृंगार के मात्र ग्रथ 'बिहारी सतसई' पर

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग १२) पृ० ११०

प्राणनाथ सत के ग्रथ की तुलना मे सतसई पर युगल किशोर के हस्ताक्षर हुए। इस सम्बन्ध मे यह हरिचरणदास का एक कथन भी महत्वपूर्ण लगता है। वे लिखते हैं। बिहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका मे—

सेवी जुगल किसोर के प्राणनाथ जी नाँव।
सप्तसती तिनसों पटी बसि सिगार बट गाँव।
जमुना तट सिगार बट तुलसी विपिन सुदेश।
सेवत सत महत जहि देषत हरत कलेस।

यमुना के तट पर वृन्दावन मे शृगार वट स्थल पर युगल किशोर के सेवक प्राणनाथ जी से कवि ने बिहारी सतसई पढी। यहां सत महत शृंगार वट वृन्दावन की सदा सेवा मे प्रवृत्त रहते हैं और इन्हे देखकर समस्त क्लेश दूर हो जाते है।

सत महतों से सेवित वृन्दावन भूमि के शृगार वट पर युगल किशोर जी के सेवक प्राणनाथ जी ने बिहारी सतसई हमारे कवि को पढाई। ऐसे वातावरण मे क्या प्राणनाथ जी ने बिहारी सतसई को शृगार रस का ग्रथ मानकर पढाया होगा? यह स्पष्ट ध्वनि है कि ये सभी इस 'सतसई' को धार्मिक ग्रथ ही समझते होगे।

आधुनिक युग मे भी कुछ ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति मिल सकते हैं जो बिहारी सतसई को धर्मग्रथ मानते हैं। मुझे ऐसा ही प्रसङ्ग स्मरण आ रहा है। मैं दो वर्ष सन् ५३ से ५५ तक कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग का रीडर-अध्यक्ष था। वहा काली प्रसाद खेतान बार-एट-लॉ से मिलना जुलना होता था। उन्हें हिन्दी से प्रेम था। उन्होने बिहारी सतसई का गम्भीर अध्ययन किया था। 'बिहारी सतसई' मे इतिहास-सामग्री पर उन्होने कुछ निबन्ध लिख कर प्रकाशित कराये थे, जिन्हे उन्होने पुस्तक रूप मे भी प्रस्तुत कर दिया था। उनका कहना था कि 'बिहारी सतसई' वैष्णव धर्म की 'दस बारह भावना' से सम्बन्धित धर्म ग्रथ है। आप विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लोग बिहारी का अध्यापन बहुत गलत करते हैं। उन्होने यह भी कहा था कि रत्नाकर जी ने बिहारी रत्नाकर में जो सतसई का रूप दिया है, वह पूर्णत ठीक है क्योकि वह उन धर्म की मूल भावनाओ को क्रम से प्रस्तुत करता है।

एक बार-एट-ला कलकत्ता हाईकोर्ट मे वकालत करने वालो मे प्रमुख सुप्रीमकोर्ट मे भी वकालत करने का जिसे अधिकार जो कलकत्ता के गिने चुने मनीषियो मे माना जाता था, वह इसे धार्मिक ग्रथ बता रहा है।

ऐसे ही एक प्रबुद्ध इतिहास विशेषज्ञ डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी जी यह मानते थे और सिद्ध करते थे कि भक्ति कालीन कवियो और रीतिकालीन कवियो मे अन्तर नही किया जा सकता और यह कहना और भी गलत है कि रीतिकालीन कवि भक्त नही थे।

इन आंकडो और विचार बिन्दुओ से यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम रीतिकाल विषयक अपनी धारणा पर पुन विचार करें।

इस युग के राजाओ-महाराजाओ के सम्बन्ध मे यह धारणा भी आज पुन विचार चाहती है कि ये विलासी थे और शौर्य समाप्त हो चुका था।

क्या यह बात हमारा ध्यान आकर्षित नही करती कि सिख शूरवीरता के बाने मे इसी युग मे सजे मराठो का शौर्य इसी युग मे चमका। भरतपुर के जाटो ने बडो-बडो को नाको चने इस युग मे चबवाये। महाराजा जसवन्तसिंह का पूरा जीवन युद्ध करते बीता, उसी मे उनकी मृत्यु हुई। वीर दुर्गादास इसी युग की देन है। अमरसिंह राठौर ने क्या किसी अन्य युग मे साका किया था। इस युग का इतिहास ऐसे वीर पुरषो की लम्बी परम्परा का साक्षी है। राजस्थान के स्थानीय कवियो के शतश छद ग्रन्थ वीर राजपूतो की शूरवीरता की यशगाथा गाते हैं। मिरजा राजा जयसिंह का नई रानी के साथ विलास मे डूब कर राजकाज पर ध्यान न देने की बात पर भी बहुत बल दिया जाता है और बिहारी के दोहो के चमत्कार पर मुग्ध हुआ जाता है।

> नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास, एहि काल।
> अली, कली ही सो किधों, आगे कौन हवाल॥

और यह कहा जाता है कि शृ गार रस के रसिक विलास मिरजा राजा जयसिंह ने शृ गार रस के कवि को अपनी प्रकृति से मेल खाने के कारण ही दरबार मे आश्रय दिया था और एक दोहे पर एक अशर्फी दी थी। इस युग के कवि दरबारी थे—राजाओ को प्रसन्न करना उनका ध्येय था अत विलासी थे? अत शृ गार रस पर लिखते थे—स्त्रियो को निरख-परख करके नायिका भेद और नखसिख लिखते थे।

बिहारी के उक्त दोहो मे क्या राजा की खुशामद और राजा के प्रसन्न करने की भावना है, या शृ गार रस के उद्दीपन का तत्व है। और परिणाम इस दोहे का क्या सिद्ध करता है? कवि राजा को विलास के प्रबल रग में से बाहर निकाल लाता है।

स्वारथ, सुकृत, न, श्रम, वृथा,
देखि विहग विचारि,
बाज, पराये पानि पर तू पच्छीनु न मारि ।।

मे भी सभवत दरबारदारी और खुशामद भरी हुई है। ऐसे ही अन्य कवियो के सम्बन्ध मे भी समझना होगा।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि रीतिकाल विषयक धाराओं पर पुनर्विचार आवश्यक है।

रीतिकाल मे साहित्यिक कृतित्व के लिए मार्गदर्शन सस्कृत साहित्य की दशा-दिशा से ही इस काल मे मिला क्योकि इस समय हिन्दी की ओर पलडा झुका हुआ होने पर भी सस्कृत साहित्य की धारा निरन्तर प्रवाहित थी। रसगगाधर कर्त्ता पण्डित राज जगन्नाथ अकबर के समय मे ही हुए थे। आईने अकबरी से विदित होता है कि इस समय साहित्य के अन्तर्गत काव्यशास्त्रीय पक्ष ही मान्य था। अत हिन्दी मे रीति कवियो का मूल स्रोत सस्कृत काव्य शास्त्र ही था। यह बात हिन्दी के रीति ग्रथ प्रणेताओ के कथनो से भी सिद्ध होती है। प्राय सभी ने यह कहा कि सस्कृत कठिन है और सबकी समझ मे नहीं आती अत हिन्दी मे विविध काव्य-शास्त्रो को मथ कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

'रीतिकाल में साहित्यिक कृतित्व के लिए मार्गदर्शन सस्कृत साहित्य की दशा—दिशा से ही इस काल मे मिला क्योंकि इस समय हिन्दी की ओर पलडा झुका होने पर भी सस्कृत साहित्य की धारा निरन्तर प्रवाहित थी। 'आइन अकबरी' से विदित होता है कि उस समय साहित्य के अन्तर्गत काव्य-शास्त्रीय पक्ष ही मान्य था। 'रसगगाधर' के कर्त्ता पडितराज जगन्नाथ शाहजहाँ के समकालीन थे। यह काल हिन्दी काव्य-शास्त्र का भी उन्नत काल था। हिन्दी के प्रसिद्ध आचाय कुलपति मिश्र ने प० जगन्नाथ से ही काव्य-शिक्षा प्राप्त की थी।[1] इसे यो भी कहा जा सकता है कि हिन्दी के आचार्य सस्कृत से काव्य-शिक्षा प्राप्त कर हिन्दी के लिए सैद्धान्तिक ग्रथो का सृजन कर रहे थे—

---

१. तैलग वेलनाटीय द्विज जगन्नाथ तिरशूल धर।
शाहजहाँ दिल्लीश किय पडितराज प्रसिद्ध धर ।।
उनके पग को ध्यान धरि इष्ट देव सम जानि।
उक्ति-जुक्ति वहु भेद भरि ग्रथहि कहो वखानि ।।
—सग्रामसार (कुलपति मिश्र) ११४-१५

सस्कृत कौ अर्थ लै भापा शुद्ध विचार।
उदाहरण क्रम ए किए लीजौ सुकवि सुधार ।।१०।।

—अलकार पचाशिका (मतिराम)

तिन मधि कुवलयानद मत अर्नो कियो उद्योग।
अलकार चन्द्रोदय निकारयौ सुमति लपि भे जोग ।।

—अलकार चन्द्रोदय (रसिक सुमति)

—अत हिन्दी मे रीति कवियो का मूल स्रोत सस्कृत काव्य शास्त्र ही था। यह बात हिन्दी के इन रीति ग्रथ प्रणेताओं के कथन से भी सिद्ध होती है। प्राय सभी ने यह कहा कि सस्कृत कठिन है और सब की समझ म नही आती अत हिन्दी मे विविध काव्य-शास्त्रो को मथ कर प्रस्तुत किया जा रहा है।[1]

तब इन साहित्यिक प्रयत्नो को सस्कृत काव्य धारा के रूप मे ही स्थान देना होगा। यह एक स्वाभाविक परिणाम था—युग सस्कृत से लोक भाषाओ की ओर मुड गया था। इसी वि शता पर खेद केशव ने प्रकट किया था कि जिसके घर के दास भी सस्कृत ही बोलते थे उसमे जन्म लेकर भी केशव को हिन्दी मे क ता करनी पडी।[2] अत प्राय प्रत्येक रीतिग्रथ लेखक की मनीषा देव-भाषा सस्कृत से निरन्तर सम्बद्ध रही।

दूसरी बात रीतिग्रथ रचनाओ की प्रेरणा म हमे सभा मे सफलता और सम्मान पाने की भावना भी मिलती है। कई रीतिग्रथकारों ने यह कहा है कि जो इस पुस्तक को कण्ठहार बना लेगा, उसको सभा मे नीचा नही देखना पडेगा और वह सम्मान प्राप्त करेगा। अत इन रचनाओ का एक उद्देश्य कवि को सभा मे चतुर बनाना भी था।[3] पर क्या इसमे यह ध्वनि भी निकलती है कि कवियों को चापलूस और खुशामदी होना चाहिए था, या राज्य के विलास

---

१ सुरबानी याते करी नरबानी मे लाय।
याते मगु रस रीति को, सब ते समझौ जाय ।।

—सुन्दर शृगार (सुन्दरदास)

२ भापा बोलि न जानही जिनके कुल के दास।
भापा कवि भो मदमति, तेहि कुल केशवदास ।।१०।।

—कवि प्रिया (केशवदास)

३ अलकार माला जु यह पढै गुनै चित लाय।
बुध सभा परवोनता ताहि देहि हरिराय ।।

—अलकार रत्नाकर (सुरति मिश्र)

के साथ स्वयं भी विलास में डूब जाना चाहिये। सभा-चतुर के लिए इन ग्रंथों से जिस ज्ञान और जिस कौशल की आवश्यकता सिद्ध होती है वह है काव्य-शास्त्र के समग्र रूप को जानना, रसराज शृंगार पर अधिकार होना, और साहित्यिक शास्त्रीय दृष्टि से प्रतियोगिता मे जीतने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को समझने और उन पर कविता करने और सुनाने की क्षमता होनी चाहिये।

राज सभा के रूप का एक विवरण राज शेखर ने दिया है, उससे यह कल्पना की जा सकती है कि राज सभा मे केवल कवि और काव्यशास्त्रीय ही नही रहते थे। विक्रम और अकबर के नवरत्नों की तरह इन देशी नरेशों के राजदरबारो मे विभिन्न विषय के जानकार सभा मे रहते थे।

राजशेखर द्वारा किया गया दरबार का वर्णन डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे यों है—

"हमारे आलोच्य युग के आरम्भ मे राजशेखर कवि ने 'काव्य मीमांसा नामक एक विशाल विश्व कोश लिखा था। दुर्भाग्यवश सम्पूर्ण ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नही हुआ, उसका केवल एक अंश ही पाया गया है। इस अंश मे भी हमारे काम की बहुत बातें हैं। राजशेखर ने राज दरबार के जिस आदर्श का विधान किया है, वह सचमुच ही उस प्रकार का हुआ करता था, यह विश्वास करने मे कोई बाधा नही। राजशेखर कहते हैं कि राजा का कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह कवियों की सभाओं का आयोजन करें। इसके लिए एक सभा मण्डप बनवाना चाहिये। जिसमे सोलह खम्भे, चार द्वार और आठ अटारियां हो। राजा का क्रीडा-गृह इससे सटा हुआ होना चाहिए। इसके बीच मे चार खम्भो को छोडकर हाथ-भर ऊँचा एक चबूतरा होगा और इसके ऊपर एक मणि-जटित वेदिका। इसी वेदिका पर राजा का आसन होगा। इसके उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवि बैठेंगे। यदि एक ही आदमी कई भाषाओं मे कविता करता हो तो जिस भाषा मे वह अधिक प्रवीण हो उसी भाषा का कवि उसे माना जायेगा। जो कई भाषाओं मे बराबर प्रवीण है, वह उठ-उठ कर जहां चाहे बैठ सकता है। कवियों के पीछे वैदिक, दार्शनिक, पौराणिक, *स्मृतिशास्त्री, वैद्य, ज्योतिषी आदि का स्थान रहेगा। पूर्व की ओर प्राकृतिक* भाषा के कवि और उनके पीछे नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जी न, कुशीलव, तालावचर आदि रहेंगे। पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि और उनके पीछे चित्रकार, लेपकार, मणिकार, जौहरी, सुनार, बढ़ई, लुहार आदि का स्थान होना चाहिये। दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवि और उनके पीछे

वेश्या, वेश्या-लम्पट, रस्सो पर नाचने वाले नट, जादूगर, जम्भव (?), पहलवान, सिपाही आदि का स्थान निर्दिष्ट रहेगा।[1]

इस समस्त ऊहा-पोह से यह निष्कर्ष निकलता है कि—रीतिकालीन कवि संस्कृत की काव्य शास्त्रीय धारा के उत्तराधिकारी थे और उसी परम्परा को हिन्दी मे अवतीर्ण करने के प्रयत्न कर रहे थे। उसी परम्परा के अनुकूल अपनी प्रतिभा को भी सिद्ध कर रहे थे।

२ साहित्य की उस धारा म शृगार रस को रसराज उक्त परम्परा स ही सहमत होकर माना गया। नखशिख और नायक-नायिका भेद रसराजत्व की छत्र-छाया के स्वाभाविक परिणाम थे। साथ ही रसराज शृगार क देवता ही व्रजपति मान लिए गय हैं। देव ने भवानी विलास मे लिखा है 'श्यामा श्याम किशोर जुग, पद बदा जग बद। मूरति रति सिगार की शुद्ध सच्चिदानन्द' है।

३ राज दरबारी कवि होने के यह अर्थ नही थे कि वे राजा के विलास मे पडकर विलास सहायक या उद्दीपक रचनाए कर रहे थे।

४, राज दरबार मे अनेको विषयो के विद्वान रत्न रहते थे, उन्ही मे कवि भी थे। कवि अकेले नही थे कि राजा को विलास मे डुबाने के लिए रचनाए करते।

५ दरबारों मे ऐसी विद्वत् मण्डली के समक्ष सभा को जीतने के लिए कवि को अपनी अच्छी प्रतिभा का परिचय देना होता था।

६ अत यह भी निष्कर्ष निकलता है कि शृगार रस की कविता की प्रमुखता के कारण दरबार नहीं थे, वरन् भारतीय साहित्य की दीर्घ परम्परा ही थी।

७ शृगार रस को रचना का मात्र भक्ति के ह्रास का परिणाम नही था।

८ भक्ति की धारा ने कवियो को प्रभावित किया, जिससे उनके कवि-कर्म म एक दिव्यता आगयी और उनका कवि-कर्म निरर्थक होने से बच गया—"आगे के सुकवि रीझि हैं तौ है कविताई नहीं तो राधा कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।" इससे यह सिद्ध और पुष्ट होता है कि भक्ति की अभिव्यक्ति तो है ही, वह तो कहीं गयी नही है, सुकवियो की प्रशसा भी मिल गयी तो सोने मे सुगध।

इसका लाक्षणिक अर्थ यह भी है कि भक्ति तो अपनी है, उसके लिए किसी की स्वीकृति की आवश्यकता नही, पर भक्ति के साथ कवि की इच्छा

---

१ द्विवेदी, हजारी प्रसाद (डॉ०)-हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १७-१८

'कवि' की जैसी प्रतिष्ठा पाने की है। क्योंकि कवि-कर्म एक विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा का साधन होता है।

यहां भी यह दृष्टव्य है कि कवि ने राजाओं के रीझने की बात नहीं कही, 'सुकवि' के रीझने की कही है। तो कवि 'सुकवियो' को रिझाना चाहता है, उनसे मान्यता चाहता है, राजाओं को नही रिझाना चाहता। हां, यदि राजा स्वय सुकवि है तो बात दूसरी है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि यह बात हमे कुछ सशोधन सहित ही स्वीकार करनी होगी कि कवि नैतिक दृष्टि से इतना हीन हो गया था कि वह राजाओं की खुशामद करता था जीविका प्राप्त करने के लिए और उसका कवि-कर्म राजा को रिझाने के लिए था। वस्तुत दरबार मे कवि का बहुत सम्मान होता था, तथा कवि के ज्ञान गौरव और प्रतिभा पर राजा को श्रद्धा रहती थी। इस युग के कई राजाओ के सम्बन्ध मे यह उल्लेख मिलता है कि उन्होने कवि की पालकी मे स्वय कधा दिया।

हमे यह भी मिलता है कि एक कवि कई-कई दरबारों मे गया। क्यो ? वह गुण-ग्राहक की तलाश मे रहा, जहा गुण-ग्राहक नही मिला, वहा वह नहीं ठहरा।

अत इस युग मे हम यह बात दृष्टिगत रखनी होगी कि भक्ति को कवि व्यक्ति-धर्म मानता है। काव्यरचना को गुण मानता है, और यह मानता है कि गुणज्ञ ही गुण को परख कर सकता है। भला बताइये बिहारी ने ये दोहे किसके लिए लिखे—

> करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
> रे गधी, मति अध तू, अतर दिखावत काहि।
> चल्यो जाइ, ह्याँ को करै हाथिनु के व्यापार।
> नहि जानत यहि पुरबसै धोबी, और कुम्हार।
> करलै, गधि सराहिहूँ सबै रहे गहि मौन।
> गधी अध, गुलाब को गवई गाहकु कौन।

अत वह गुणज्ञ की तलाश मे रहा। जहा उसे गुणज्ञ मिला वहीं रमा और जब तक उसके गुण की ग्राहकता रही, वह वहा ठहरा अन्यथा अन्यत्र चला गया। यह बात भी तो हमारे सामने इतिहास प्रकट है कि एक कवि को दरबार मे रखने के लिए राजाओ म होड रहती थी। वृन्द कवि को माग जाने पर कई राज दरबारो का आश्रय ग्रहण करना पडा था। ऐसे ही कितने ही कवियो के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है।

भक्ति और काव्य मे यह अन्तर करने के उपरान्त हमे यह बात भी समझनी होगी कि गुण या कला गुणज्ञों से सम्मान या मान्यता (Recogni-

tion) या रीझ चाहता है, 'भक्ति' ऐसा धर्म नहीं कि वह अपना प्रदर्शन करने का प्रयत्न करे, पर वह अभिव्यक्ति के रूप मे अपने इष्टदेव के प्रति निवेदित अवश्य होना चाहती है। यह निवेदन पूजा-पाठ जाप-ध्यान आदि के द्वारा तो किया ही जाता है पर कलाकार या गुणज्ञ अपनी कला द्वारा भी करता है। इसके लिए वह उसी कला को माध्यम बनाता है, जिस कला या गुण का वह अधिकारी है —

' उलटा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।"

बाल्मीकि के पास 'मरा' शब्द ही एक साधन था। इससे उत्तम कोई अन्य साधन नही था, अत उसी के माध्यम से उन्होने भक्ति का निवेदन किया।

तुलसी वर्णानामर्थसघाना रसाना छन्दसामपि' के प्रतिभाशाली धनी थे, उन्होने इसी के माध्यम से अपनी भक्ति निवेदित की। सूर के पास पद का माध्यम था—सगीत का माध्यम था।

रीतिकालीन कवियो के पास कवित्त, सवैयों के साथ तथा अन्य छन्द-शास्त्रीय रचना-ज्ञान था तथा अलकार-रस की भेदोपभेदमय साहित्य शास्त्रीय सम्पदा थी, वे अपनी प्रतिभा और परम्परानुसार इन्ही के माध्यम स अपनी भक्ति निवेदित करते थे। इस प्रकार व्यक्ति धर्म भक्त को काव्य-कौशल का माध्यम मिला। काव्य चेतना पर भक्ति भावना आरूढ हुई। ऐसी रचनाओ की काव्य-शास्त्रीय परीक्षा की जा सकती है, और सहृदय सुकवि इन कविताओ की गुणात्मकता पर रीझ सकते हैं—यह अतिरिक्त यश कवि को मिलता है, उसका यह पक्ष उसके सम्मान का आधार बनता है, इस प्रकार यह उसकी जीविका का या पुरस्कार प्राप्ति का भी साधन बनता है। पर उसके मन का तोष, अतर्मन या आत्मा का तोष तो भक्ति निवेदन से होता है, और वह निवेदन वह कविता के माध्यम से करता है।

सगुण भक्ति धारा मे भक्ति और कवित्त-रस का अद्भुत सम्बध रहा है। इस युग के राधा-कृष्ण आलबित भक्ति-सम्प्रदायो मे युगल स्वरूप के कारण 'नायक-नायिका' का जैसा, शृ गार-रस की निष्पत्ति का योग बनता है। पर इसका एक परिणाम तो यह हुआ है कि नायक-नायिका शृ गार-रस की निष्पत्ति नही करते वे भक्ति के ही आलबन बनते हैं और प्रतीत होने वाला शृ गार-रस वस्तुत भक्ति रस ही होता है। फलत काव्य दृष्टि से शृ गार रस का समस्त समायोजन रहते हुए भी भक्ति रस ही निष्पन्न होता है। भक्ति रस का स्थायी भाव भक्ति है, जिसे देव रति भी नहीं कहा जा सकता। भक्ति रति के भाव से प्रकृति और गुण दोनो से भिन्न होती है, सगुण भक्ति मे ब्रह्म या

भगवान कवि की आस्था उसकी आत्मा की सत्ता की चेतना का आधार है, और यथार्थ है। कवि अपने इष्ट के साक्षात् के माध्यम से रूप में भक्ति को उद्रिक्त करता है। यह भक्ति मूल 'रस' नाम के कारण काव्य-शास्त्रीय भाषा में 'भाव' माना जा सकता है, स्थायी भाव। पर यथार्थ में कवि के आत्म-तत्त्व का वह भावात्मक पक्ष है, जो कवि के आत्मतत्त्व को प्लावित करके उसे इष्ट की ओर उन्मुख रखता है और आस्था के सत्य के साथ सम्बद्ध रखता है। यह भक्ति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष भक्ति का वह है जिसे हम सुविधा के लिए द्वैताद्वैत कह सकते हैं। यह द्वैताद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त से सम्बन्धित नहीं है। यह कवि और भक्ति के द्वैत से सम्बन्धित है। कवि के पास काव्य है, पर वह भक्त भी है। मनुष्य यह कब कहता है कि 'त्वदीय वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पयेत—हे गोविंद तुम्हारी वस्तु तुम्हें समर्पित है। वह यह मानता है कि गोविंद हैं। गोविंद की वस्तु है यह गोविंद की वस्तु उस कवि के पास है। वह गोविंद को उसकी वस्तु समर्पित करता है–यह स्थिति इस वक्ता की है। कवि + वस्तु गोविन्द में वस्तु और वस्तु में कवि समन्वित।

"जब मैं था तब तू नाहि,
अब तू है मैं नाहि।"

यह है द्वैताद्वैत। मैं वस्तुत तू से वस्तु पाकर ही मैं बना, अब इस द्वैत को उलटा कर वस्तु को समर्पित करते हुए कवि भी समर्पित हो गया।

यह रूप भी भक्ति की गुणात्मकता की दृष्टि से कोई हीन रूप नहीं, वरन् अधिक यथार्थ भूमि पर है। इस द्वैताद्वैत भक्ति के रूप में ही यह समीकरण प्रतिफलित होता है
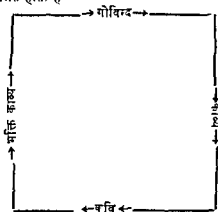
कवि + काव्य (गोविन्द की वस्तु) + गोविंद। कवि गोविंद की वस्तु काव्य गोविंद को समर्पित करता है और उसके माध्यम

से अपनी भक्ति सिद्ध कर गोविंद मे अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करता है । कवि के पास काव्य है—ईश्वर प्रदत्त है वह यह कवि की मजागत आस्था है । ईश्वर प्रदत्त इस वरदान का उसे पूरा ज्ञान है—छन्द, अलकार, रस—वर्णानामर्थ मधानाम् रसानाम् छन्दसामपि—सब का ज्ञान है उसे । इस वस्तु को भक्त होने के कारण वह अपने इष्ट को समर्पित कैसे करें ? ईश्वर की वस्तु काव्य उसके पास है रस हैं-नवरस, अलकार हैं-इनका शास्त्र ज्ञान है, और शास्त्र भी है । स्वय उसे इसका ज्ञान है ।

इसका ऐहिक उपयोग भी वह कर लेता है पर अन्तरग भक्ति की भावना से गोविंद की वस्तु को गोविंद से दूर कैसे रखता अत वह काव्य को काव्य रखता है और उसी रूप म उसे गोविंद की वस्तु बना देता है । सूरति मिश्र की साक्षी इस सम्बन्ध मे लीजिय—

सूरति सुकवि सुनो यहै, फुर जु कविता रीति ।
तौ प्रभु गुन ही वरनियै जो हिय बस सुख प्रीति ।।५८।।

काव्य सिद्धान्त सूरति मिश्र ।

इसी सदर्भ मे सूरति मिश्र विरचित रसरत्न टीका की अन्तिम पुष्पिका भी द्रष्टव्य है :

सत्रह सौ इकतिस वरस, सुखद फाल्गुन मास ।
सुकल पच्छ सातैं भयौ, घर मे अति उल्लास ।।
बडे भये विद्या पढी, कवि कोविद के साथ ।
साधु सत सिच्छा दई, सूरति भये अनाथ ।।
जगत जनम सुभकरन कौ, कीन्हों प्रभु गुन-गान ।
कृष्ण राधिका के चरित, रचे हृदय धरि ध्यान ।।
ईस भजन सिंगार अरु, कवित्त रीति को ज्ञान ।
सूरति मन सतोष अति, मिलौ महा सम्मान ।

सूरति मिश्र की साक्षी भी यही सिद्ध करती है कि ईश-भजन (भक्ति)+शृ गाररस+कवित्त रीति—यह था रीति-कवियो का फार्मूला । 'नाम' के माहात्म्य का भी लाभ कवि ने उठाया

जिन ग्रथन मँह कवित मे, आवै हरि कौ नाम ।
सो वह शुभ सूरति सुकवि, अति पवित्र सुख धाम ।।

यद्यपि डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनश' ने इसे अप्रामाणिक माना है फिर भी इसमे युग-सत्य निहित है । नाम माहात्म्य का सहारा लेकर ही नायक-नायिका को राधा-कृष्ण मानने का विशेष भाव कवि मे मिलता है । शृ गार

रस मे भक्तिरस की झिलमिली प्रस्तुत कर देता है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में भी यह शृगार रस नवरसो मे रसराज के रूप मे रहता है।[१] वह भक्ति मे विसर्जित नही होता, पर उसके अतरग मे भक्ति भावती अवश्य है। प्रत्येक रस, प्रत्येक अलकार, प्रत्येक छद, प्रत्येक 'वर्णानामर्थसघाना' म भी वह समर्पण झाकता है। बिहारी का यह दोहा—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाइ परैं, स्यामु हरित दुति होइ॥

इस दोहे का अर्थ करते समय काव्य-शास्त्रार्थी अलकारो और उनसे प्राप्त विविध अर्थों के चमत्कार मे उलझ जायगा। एक-एक शब्द पर साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से विशद विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पर कवि की भक्ति-भावना इसमे पोर-पोर मे झलकती है। इसी प्रकार अन्य कवियो के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है। अभी २३ मार्च, ७३ को डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जी से चर्चा हो पडी। उन्होने इस काल के कवियो के सम्बन्ध मे कहा कि इनके समस्त काव्य-शास्त्रीय कृतित्व म कवि की आत्मा

---

१ यहा देव का वह कवित्त ध्यान मे आता है, जिसमे उन्होने कहा है कि शृगार रस का सार है—'किशोर-किशोरी', है वह छन्द'—

"देव सबै सुखदायक सम्पति,
सम्पति को सुख दम्पति जोरी।
दम्पति दीपति प्रेम प्रतीति,
प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति तहा गुणरीति विचार,
विचार की वानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो शृगार,
शृगार को सार किशोर किशोरी।"

सुख सागर तरग (देव)

इससे भी आगे देव कहते हैः—

"माया देवी नायिका, नायक पुरुष आप।
सबै दम्पतिन मे प्रकट, देव करै तिहि जाप।"

सुख सागर तरग (देव)

रीतिकालीन एक महान कवि के इस उल्लेख का कोई अर्थ तो होना ही चाहिये। स्पष्ट है कि भक्ति की भावना बद्धमूल है और वह काव्य मे प्रतिफलित है।

नही रमी—वह तो किसी और सौन्दर्य पर मुग्ध है। वे घनानन्द की पंक्तियाँ बोलते हैं—"उन पांयनि की नेंक धूरि आन दे।"—उनका अभिमत है कि यह अदम्य भावना क्या बताती है—वे अब देव के छंदों को प्रस्तुत कर रहे हैं, उनमे जो आत्मा की आवाज है वह उनकी शास्त्र-चर्चा या रीति-चर्चा मे कहाँ है ? वे यह भी मानते हैं कि इन कवियो की भाषा लोक-भाषा है और लोक के भक्ति समन्वित हृदय से ही इन कवियों का तादात्म्य है, इनकी आत्मा वही रम रही है। उपाध्याय जी भी यह मानते हैं कि अब रीतिकालीन काव्य के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। आधुनिकतावादी डॉ० उपाध्याय के इस मत को हमने यहा इसीलिए टाका है कि इन कवियो की आत्मा मे उन्हे भी भक्ति की सरसता मिलती है।

इसी रीति धारा के कवि है हमारे : हरिचरणदास। ये बिहार के एक गाव से चलकर वृन्दावन आये। वहा भक्ति भाव से गुरु प्राणनाथ की सेवा की। वहा कितने ही सत-महत रहते थे। ऐसे वातावरण म गुरु प्राणनाथ से इन्होने बिहारी सतसई का अध्ययन किया। इनका विशेष निवास किशनगढ रहा। किशनगढ का पूरा घराना—राजा भी और रानी भी भक्त थे—कोई वल्लभ सम्प्रदाय का तो कोई निम्बार्क सम्प्रदाय का। निम्बार्क सम्प्रदाय की परशुराम देवाचार्य की गद्दी तो किशनगढ के पास सलेमावाद मे है। तो हमारे हरिचरणदास किशनगढ आकर बसे। यहा भी वे भक्ति भावना के वातावरण मे थे। किशनगढ राजघराने से कितने ही कवियो का सम्बन्ध रहा है। इनमे से कितने ही रीतिग्रथ लेखक थे। इस प्रकार एक भव्य साहित्यिक और भक्ति प्लावित वातावरण मे हरिचरणदास ने साहित्य सृष्टि की। इनके ग्रथो मे से एक छोटी सी रचना मोहन-लीला, जो एक प्रकार से अप्राप्य ही थी, यहाँ प्रकाशित की गयी है। ऊपर की विवेचना से यह तो स्पष्ट है कि 'मोहन लीला' में भक्ति भावना की झिलमिली और काव्य शास्त्र-बद्ध काव्य का ढाचा है।[1]

मोहन-लीला की विषय-वस्तु पर ध्यान जाते ही कवि के उल्लेख से ही विदित होता है कि उसने यह लीला 'भागवत' के अनुसार लिखी है। कहीं-कहीं कुछ छोड दिया है। कहीं कुछ परिवर्तन या परिवर्द्धन भी है। कवि ने

---

१. सूरति मिश्र का यह दोहा इसी स्थिति का सूचक है:—
"कवि ताही कूँ कहत हैं, समुझै कविता अग।
ब्रज सविता गुन जो कन्है, तौ छवि ता प्रति अग।"

बताया है—

"कह्यौ दसम अनुसार क्रम घटिबढि कें कहुँ कौन ।"
जहाँ बचन जाको बनै लै हैं लाय प्रवीन ।।१७६।।

पृ० ७२

मूल ग्रंथ में भी कहीं-कहीं भागवत से अन्तर की ओर ध्यान आकर्षित किया है—यथा 'दावाग्नि पान' का वर्णन करने के उपरान्त "अथ रितु बर्नन" "रितु बर्नन करि पाछे प्रलंबबध दावाग्निपान कहेंगे । इहा कछु भागवत के क्रम सौं बीच हैं ।" पृ० ५४

इस मोहन लीला मे यह क्रम इस प्रकार है

१. हरिपगु की वंदना २ नन्दलाल के रूप का आकर्षण ३ कलिन्द-नन्दिनी स्तुति ४. वृन्दावन वर्णन ५. सात (शान्त) रस ६ श्री कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन ७ जन्मोत्सव, इसी विषय पर कवि ने अपने पूर्वरचित भागवत सार का एक छन्द उद्धृत किया है । ८ पूतना को प्रसंग । ९ नन्द आदि गोपों का कर देने मथुरा जाने का गद्य मे उल्लेख १०. सकटासुर-बध ११ तृनावर्त-बध १२ यशोदा को मुख म सम्पूर्ण विश्व दिखाया १३ राधा जन्म भादौं शुक्ला अष्टमी को १४ भादौं शुक्ला एकादशी को यशोदा ने जल पूजन किया १५ नामकरण १६ बाललीला १७ ढिठौना वर्णन—इसमें घर मे कृष्ण की बाललीलाओं और बाल क्रीडाओं का वर्णन है । १८ उराहनौ—पहले गद्य मे टिप्पणी दी है कि जब यशोदा के पुत्र नहीं थे तो वे देखती थीं कि किसी पुत्रवती को उसके पुत्र की करतूतो के कारण उलाहने आते हैं । ऐसे उलाहने सुनने की तब यशोदा मे हौंस होती थी । उमी सुख के लिए गोपियाँ कृष्ण के उलाहने यशोदा के पास लाती हैं—तब एक छन्द मे उलाहने का उल्लेख है । १९ बतीसा २० मृत्तिका भक्षण तथा मुख मे सम्पूर्ण विश्व दिखाना २१ दामोदर लीला, इन्द्र की पूजा की मिठाई कृष्ण ने झूठी करदी, क्रुद्ध हो यशोदा न उन्हे ऊखल से बाध दिया जिससे उन्होंने यमलार्जुन का उद्धार किया । गद्य म यह उल्लेख कर दो छदो मे लीला का वर्णन है । इनमे से एक छद इन्होंने अपनी पूर्वकृति भागवत प्रकाश मे दिया है । २२. ब्रज देवी कृष्ण को नचाती है । २३ वृन्दावन गवन २४ वृन्दावन वर्णन २५. वत्सासुर वध २६ बकासुर बध, २७ भादौं कृष्णा द्वादशी से बछरा चराने लगे २८ छाक लीला २९. अघासुर वध, ३०. वत्सारण ३१ ब्रह्मा द्वारा स्तुति ३२ गोचारण लीला कार्तिक शुक्ला अष्टमी को कृष्ण गाय चराने लगे,

३३ धेनुक वध ३४. कालियलीला ३५ दावाग्निपान ३६ रितु वर्णन, बसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शीत, शिशिर ३७. बसत पचमी ३८ होरी ३९. प्रलब वध ४०. भुज बन की दावाग्नि का पान ४१ वेणुगीत ४२ चीर हरण, ४३ द्विज पत्नी प्रसग ४४. गोवर्द्धन धारण लीला, यहां पर अपनी पूर्वकृति भागवत प्रकाश के भी कुछ छद दिये हैं। ४५ नन्द जी को वरुण के दूत ले गये ४६. गोपो को मोक्ष रक्षा दिखाना, ४७ रासलीला, तुलसी से गोपिया कृष्ण का पता पूछती हैं, पग चिह्नो से विदित हुआ कि कृष्ण एक गोपी के साथ गये, बाद मे उसे भी छोड गये, तब सभी के विलाप करने पर कृष्ण प्रकट भये। ४८ रास नृत्य, ४९ जलकेलि, ५० सुदर्शन यक्ष का प्रसग ५१ शखचूड का वध ५२ युगलगीत ५३ अरिष्टासुर वध, ५४. केशी वध, ५५ व्योमासुर वध, ५६, अक्रूर आगमन ५७ कृष्ण प्रयाण ५८. कृष्ण बल्देव मथुरा देखने गये ५९ कुबलयापीड का मारना ६० मल्ल युद्ध, ६१ कस वध ६२ नन्द की विदा—

"बिदा देत हरि नन्द कों जो दुप उपज्यौ आय।
पाहन तें ह्वै कठिन हिय तामौं वग्न्यौ जाय।।"

ग्रथ माहात्म्य तथा कवि परिचय।

कवि ने मोहन लीला में कहीं-कहीं तो एक ही प्रसग मे कई छद रखे हैं। कही गद्य वार्ता से काम चलाया है, कही एक ही छद कवित्त-सवैया या दोहा देकर ही प्रसग समाप्त कर दिया है।

'मोहनलीला' के माहात्म्य वर्णन म कवि ने बताया है कि.—

सब सुख श्रवनी में मिलै, सखा कान्ह कौ होय।
पढै सुनै ताको सदा पूरन ह्वै है सब काम ।।

कवि ने दो प्रसगो के पढने का भी माहात्म्य बताया है—

रासराति हरि जन्म दिन, या मैं पढ़ै जु कोय।
सुनै पाठ ताके हिए, मोहन परगट होय।।

पढने सुनने वालो को ही फल-प्राप्ति नहीं, स्वय कवि अपने लिए भी कामना कर रहा है—

प्रेम भक्ति द्यौ मे नही चाहत हौं निरवान।

'मोहन लीला' के पढने सुनने से समस्त रोग नष्ट होते हैं, गोविन्द में मन लगता है, अनायास योग की प्राप्ति हो जाती है। तुलसी का सेवन, वृन्दावन का वास, यमुना का तट तथा राधा-हरि का दासत्व सभी मिल जाते हैं।

यह माहात्म्य वर्णन भी इस छोटे से ग्रथ को भक्ति का पोषक सिद्ध करता है ।

कवि ने 'मोहन लीला' से पूर्व 'भागवत प्रकाश'—ग्रथ भी लिखा था । यह अवश्य ही बडा ग्रथ होगा । प्रश्न उठता है कि 'भागवत प्रकाश' के बाद भागवत के आधार पर ही 'मोहन लीला' क्यो लिखी ? इसका उत्तर हमे सूरति मिश्र लिखित कृष्ण चरित' की पुष्पिका से मिलता है । सूरति मिश्र ने कृष्ण जन्म से लेकर द्वारिका मे विराजने तक की पूरी लीला केवल ११ छदो मे दी है । कवि ने बताया है कि—

ए चरित सेस दिनेस श्री गनेस हिय अभिराम है ।
सूरति सुकवि श्री भागवत को ध्यान यह सुखधाम है ।।

कवि ने ग्यारह छदो मे यह 'कृष्ण चरित' भागवत के ध्यान के लिए लिखा । भागवत का ध्यान भी भक्ति का एक प्रमुख सोपान है । पर हरिचरण दास न तो 'मोहन लीला' मे व्रज-वृन्दावन की लीलाओ का ही वर्णन किया है । कृष्ण कस को पछाड देते हैं । उसके बाद नन्द को विदा देते हैं । व्रज की करुण दशा की एक झाँकी देकर 'मोहन लीला' समाप्त हो गयी है । यह 'मोहन लीला' वस्तुत साक्षात मोहन के ध्यान के लिए लिखी गयी है । हरिचरणदास कृष्ण को सखा-रूप मे चाहते है, और उनकी प्रेमाभक्ति चाहते हैं, यह इस कृति से स्पष्ट प्रकट है । 'भागवत प्रकाश' भागवत का अनुवाद जैसा होगा पर 'मोहन लीला' ' यह तो भागवत के मोहन की लीलाओ का कवि द्वारा अपनी कविताओं के माध्यम से पुनीत स्मरण है । यह भी भक्ति का एक सोपान है ।

कवि की कविता के रग-रग म कृष्ण रमे हुए हैं । यह द्रष्टव्य है कि कवि ने तुलसी मे समस्त तीर्थों का वास माना है । वह तुलसी हरि चरणो म अर्पित है कवि उन्हीं चरणो को अपने हृदय मे स्थान देना चाहता है ।

यही सब तीर्थों से युक्त तुलसी-दल की माला भी कवि ने कृष्ण के गले म डाल दी है और वे मुरली धारण किए हुए राधा के साथ वन मे विचरण कर रहे है ।

उस समय कृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

वान कटाछ कमान सी भौंह, अनग के चारु निषग विलोचन ।

यहाँ कवि का काव्य मचल उठा और कटाक्ष का बान मारकर कटाक्ष-निधान विलोचन को 'अनग का चारु निषग बता दिया है । कृष्ण कोटि काम

लजावन हारे तो हैं ही, पर स्वय कामदेव भी हैं। उनके पुत्र प्रद्युम्न भी साक्षात् कामदेव माने गये हैं। यहाँ पर शृंगार-रस की रसवत्ता है, रति का भाव पूर्णत परिपक्व है, और कवि का कवित्व-रस, अलकार-सौष्ठव और अधिक छलक उठा है। काम के तरकस के ये कटाक्ष बाण हृदय मे काम-पीडक न बन कर भक्ति-उत्तेजक बन गये हैं। तभी राधा कृष्ण की क्रीडा और शोभा को देखकर

'होत खुशी ललितादि सखीगन'

कवि ने बताया है कि कलिंद-नन्दिनी यमुना की 'धार' कर्म-बन्धन काटने के लिए 'तरवारि' है—तथा

छूवै नैंकु नीर पावै पुन्य कौ सरीर
पाप रहैं एकौ मासा न वतासा जैसें पानी मैं।

तो यमुना तीर भी तीर्थ है, पर तुलसी मे तो सभी तीर्थ वास करते हैं—उसे धारण किये हैं कृष्ण-फिर 'काम' का सौन्दर्य भी भक्ति के लिए उद्दाम उद्दीपन हो जाय तो आश्चर्य क्या? कवि की काव्योक्तियाँ और कवित्तरस अन्य रसो को भी कृष्ण-भक्ति की उज्ज्वल जलधारा मे आप्लावित करा रहा है—यहाँ कवित्व भी जैसे कृतार्थ हो रहा है—कवि यहाँ कवित्व के समस्त अगो से युक्त होकर उनमे डूब कर उनके परम अर्थ के माध्यम से तिरकर पार उतर गया है—बिहारी ने कहा था

तन्त्रीनाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रग।
अनबूडे बूडे, तिरे, जे बूडे सब अग।

अन्य रसो मे 'शान्तरस' भी तो है कवि कहता है कि 'शान्तरस' का निर्वेद भी असफल रहेगा.

ज्यौ मन मे न कलिंद सुता तट खेलत नद कौ नन्दन आयौ।

इस प्रकार जब कवि यह कहता है कि

पारति हैं कुल देव के पायँ परें कुलदेव गोपाल के पाँयन।

यशोदा तो मातृ-ममता मे पगी पुत्र के कल्याणार्थ उन्हे कुल देवो के चरणो मे डालती है, इस विनती के साथ कि आप इस मेरे अत्यन्त प्रिय बालक की रक्षा करें। पर कुल देवता तो जानते हैं कि ये कौन हैं? अत वे स्वय बाल-कृष्ण गोपाल के चरणो मे पडते हैं। कुल देवताओ का गोपाल के चरणो मे गिरने की क्रिया यशोदा को दिखायी नहीं देती वह तो लौकिक पूजा करके

निश्चित हो जाती है, पर उतना ही सब कुछ तो यथार्थ नहीं है, वह यथार्थ कवि को दिखायी पडता है। उसकी काव्योक्ति लौकिक पूजा के व्यवहार को भी 'कृष्णार्पण' कर देती है। यो उक्ति भी सार्थकता प्राप्त करती है।

कवि कुछ अनूठी उक्ति भी कहना चाहता है। शिशु कृष्ण ने अपने पैर का अगूठा मुँह मे दे लिया है—महाकवि सूर ने भी देखा था

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढे पालनें अकेले, हरपि-हरपि अपनें रग खेलत।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, वट बाढ्यौ सागर-जल भेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कपित, सेप सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-वासिनि वात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत॥

सूर को कृष्ण ब्रह्म का वह रूप दिखायी पडा जो प्रलय के पश्चात् विशाल जल राशि मे तैर रहा था—एक पत्ते पर बाल-ब्रह्म मुँह मे अगूठा दिये हुए। सूर ने त्रिदेवो के लिए सकट खडा कर दिया—पर इस कवि की दृष्टि एक अन्य बात पर गयी, जो भक्ति-तत्व से विशेष सम्बद्ध है। बालक अँगूठा चूसता है। अँगूठा मुँह मे देने की क्रिया के लिए ही अँगूठा मुँह म नही दिया जाता, उसका अर्थ भी है कि बालक उस चूसना चाहता है। भगवान की प्रत्येक क्रिया सकारण होनी चाहिये? तो कृष्ण अपने पैर का अँगूठा क्यो चूसना चाहते हैं? जलसे अँगूठा धोकर चरणामृत बनता है। इस चरणामृत का भक्त और साधु बहुत बखान करते हैं—उसका बहुत यश गाते हैं—उसकी एक बूँद के लिए भी निहोरा करते हैं। ऐसा क्यो करते हैं? उनकी बातो मे क्या सार है?

सतन की वानी ताकै पारपि कौं ठानी कहैं,
मांची कैंधौ भूठौ यौं अ गूठौ पाय को पिएँ।

'यौं' शब्द मे इस उक्ति को कवि ने काव्योक्ति ही बना दिया है, पर भक्ति के प्रति कृतार्थता का भाव इसम अवश्य समाया हुआ है।

इन कुछ उदाहरणों से यहाँ उस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है, जिससे कवि का काव्य भक्ति को समर्पित हुआ है। 'काव्य' के मान दण्ड काव्य-शास्त्र से निर्धारित होते हैं और सुकवि उनके आधार पर ही किसी काव्य पर रीभता है। भक्ति की भावना का कृतित्व उन मानदण्डों से नही परखा जा सकता। दो भिन्न तत्व हैं। इस युग का कवि दोनों को समन्वित कर चार चाँद लगाना

चाहता है। पर 'काव्य' की परीक्षा तो सुकवि ही करेगा, भक्ति भावना की साधना कवि की अपनी है—तभी वह कहता है कि मेरी रचना मेरी भक्ति भावना की साधना की दृष्टि से तो सफल है क्योंकि 'राधिका-कन्हाई' का स्मरण है इसमे, पर इसमे मैंने जो 'कवित्व' भी खडा किया है, उसकी सफलता तो सुकवि के रीझने पर ही है

जो पै सुकवि रीझि है तो कविताई ।।

मैं कवि तभी माना जाऊँगा, जब सुकवि रीझेगे पर यदि सुकवि न रीझे तो ? न रीझें, मेरी भक्ति तो सिद्ध होती ही है। यह कवि उस भक्ति को सिद्ध करने के लिए काव्य का आश्रय लेता है—सुकवि रीझें, काव्य भी उत्कृष्ट माना जाय और उसमे प्रतिष्ठित भक्ति तो सिद्ध है ही—यो सोने मे सुगन्ध भरना चाहता है कवि।

इसी परम्परा का अनूठा काव्य यह 'मोहन लीला' है, जिसके माध्यम से कवि ने कृष्ण की ब्रज—लीला का ध्यान किया है। काव्योक्तियो को कृष्ण भक्ति की पावन धारा मे स्नान कराके कवि ने 'मोहन लीला' प्रस्तुत की है।

प० कृपाशकर तिवारी ने परिश्रमपूर्वक यह पुस्तक प्राप्त की और इसका पाठ प्रस्तुत किया। जहाँ तक ज्ञात हुआ है, अभी तक इसकी एक ही प्रति हाथ आयी है, और यह प्रति ही तिवारी जी ने प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर दी है। अतएव इस अलभ्य कृति को सुलभ बना कर प्रो० तिवारी ने बडी कृपा की है, मैं ऐसा मानता हूँ। मैं इसे कृपा इसलिए कहता हूँ कि 'मोहन लीला' 'भागवत ध्यान' विषयक एक परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है। इसके माध्यम से 'ध्यान परम्परा' के साहित्य की ओर विद्वानो और भक्तो की भी दृष्टि जायगी। यह कृति सुकवि और भक्त दोनो को भायेगी। मेरे लिए यह कृपा इसलिए भी है कि कृपा-शकर' ने कृपापूर्वक मुझसे इसकी भूमिका लिखने का आग्रह किया—यथार्थ यह है कि 'मोहन लीला' के छपवाने की शर्त ही उन्होंने इसे बना दिया, जिससे मुझे भूमिका लिखनी पडी और इस बहाने रीतिकालीन 'काव्यमय भक्ति' पर एक दृष्टि डालने का अवसर मिला।

प्रो० कृपाशकर तिवारी राजस्थान विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं, जिन्हे उच्च हिन्दी शिक्षा का २० वर्ष से कम का अनुभव नहीं है। पर ये मौन साहित्य साधक हैं। इन्होने एक अच्छा हस्तलेख भण्डार बना लिया है। उसके आधार पर 'हिन्दी साहित्य के इतिहास की असंशोधित कड़ियाँ' नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रथ भी आपने तैयार किया है। इनका यह समस्त कृतित्व तो शोध-क्षेत्र को महत्वपूर्ण योगदान ही माना

जायेगा। पर प्रो० कृपाशकर तिवारी को जो निकट से जानते हैं, वे इस बात से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते कि वे राय कृष्ण दास और वियोगीहरि की परम्परा के गद्यकाव्य लेखक भी हैं, और ऐसे गद्यकाव्यो मे वे अपने-अपने अनुभूत तत्वो को अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ किसी (?) को समर्पित करते हुए या किसी को सबोधित करते हुए भावनाभिभूत शब्दावली से—'शब्दार्थो सहितौ 'काव्य' का भी सृजन करते जाते हैं—गद्य मे। पर उसे प्रकट करने मे लाजवती की-सी लज्जा से युक्त हो जाते हैं—उसकी भनक भी किसी को कानो मे नही पडने देते।

ऐसे प्रो० तिवारी ने 'मोहन लीला' को प्रकाशित कराने का सकल्प किया तो कृपा ही तो की और अब तो वे 'हिन्दी साहित्य के इतिहास की असशोधित कडियाँ' नामक पुस्तक का प्रकाशन भी मेरे आग्रह से कराने को तत्पर हो गये हैं।

प्रो० तिवारी जी के इस कार्य के सपादन मे सबसे बडा और महत्व-पूर्ण योगदान डॉ० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ का है। ये भी राजस्थान विश्व विद्यालय के हिन्दी-विभाग के अनुसन्धान-अधिकारी हैं। वहाँ का गम्भीर उत्तरदायित्व निबाहते हुए ये तिवारी जी की शोध के सम्पादन मे तत्परता-पूर्वक सन्नद्ध रहे हैं। इनके सहयोग का ही यह सुफल है कि तिवारी जी इन ग्रथो को प्रकाशित कराने के लिए फुसलाये जा सके।

प० कृपाशकर तिवारी जी पर भी ये कुछ पक्तियाँ मुझे इसी कारण लिखनी पडी कि 'अज्ञात' ग्रथ के सम्पादक भी कही अज्ञात न रह जायें। क्योकि वे स्वय तो अपने सम्बन्ध मे कुछ कह नहीं पाते। अत कृति और कृतिकार के परिचय के साथ उसके सम्पादक का परिचय भी मुझे देना चाहिए—ऐसा मैंने माना।

अब यह पुस्तक पाठको को समर्पित है।

डॉ० सत्येन्द्र
निदेशक,
राजस्थान हिन्दी ग्रथ अकादमी
जयपुर।

नवरात्र स्थापना दिवस,
४ अप्रैल, १९७३

———

आचार्य हरिचरणदास

आचार्य हरिचरण दास आचार्य, कवि, टीकाकार, कोषकार के रूप में हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प्रकट हुये। इन्होंने खण्डन-मण्डन की दृष्टि से 'काव्य शास्त्र', उत्कृष्ट कोटि की कविता, पाडित्यपूर्ण टीकायें तथा महत्वपूर्ण कोष ग्रथो का सृजन किया। हिन्दी साहित्य जगत मे इस प्रकार के महत्वपूर्ण योगदान के बाद भी इन्हे महत्वपूर्ण स्थान नही मिल सका। हिन्दी के अनेक महत्वपूर्ण, उच्चकोटि तथा ऐतिहासिक ग्रंथो- प० रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास), डॉ० रामकुमार वर्मा (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास), डॉ० भगीरथ मिश्र (हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास), नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ट भाग) मे उल्लेख तक नही मिलता है। समय-समय पर विद्वानो ने इनके सम्बन्ध मे विचार प्रकट किये हैं। इन विचारो मे हमे मतैक्य नही मिलता है।

हमे हरिचरण दास के सम्बन्ध में सर्व प्रथम उल्लेख 'शिवसिंह सरोज'[1] मे मिलता हैं जिसमे 'भाषा साहित्य का महासुन्दर, अद्भुत, अपूर्व वृहत् कवि-वल्लभ नामक एक ग्रंथ' के सम्बन्ध मे लिखा है साथ ही खोज में प्राप्त (१) कवि प्रियाभरण (२) चमत्कारचन्द्रिका या भाषाभूषण की टीका (३) विहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका, (४) कवि वल्लभ (५) सभा प्रकाश, ग्रंथो का उल्लेख किया है। मिश्र बन्धुओ ने 'मिश्रबन्धु'[2] मे हरिचरणदास का उल्लेख किया है। इसमें इन्होने इनके निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है—

(१) कवि प्रिया की टीका
(२) रसिक प्रिया की टीका
(३) बिहारी सतसई की टीका

---

१. सेंगर, शिवसिंह-शिवसिंह सरोज, पृ० ३४४
२ मिश्रबधु-मिश्रबन्धु विनोद भाग १ (खण्ड १, २), पृ० ४३२

(४) भाषाभूषण की टीका

(५) सभा प्रकाश, तथा

(६) कवि वल्लभ

उपर्युक्त ६ ग्र थो म से तीन ग्र थो का रचना काल भी दिया है–सभा प्रकाश की रचना १८१४, सतसई टीका १८३४ मे, कवि प्रिया की टीका १८३५ मे । उन्होने कवि प्रिया की टीका छतरपुर दरबार के पुस्तकालय मे देखी थी । शेष पुस्तको का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के आधार पर किया है । इन्होने इनके पाण्डित्य की प्रशसा की है और तोष कवि की श्रेणी मे समझा है । मिश्रबन्धुओं के अतिरिक्त मोतीलाल, मेनारिया,[२] शिवपूजन सहाय,[३] डॉ० जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन,[१] आचार्य नलिन विलोचन शर्मा[४] ने इनके जीवन, साहित्य के सम्बन्ध म सकेत किये है ।

हरिचरणदास का यथार्थ उद्घाटन १०-१२ वर्ष पूर्व ही हुआ है । इधर इनकी ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है [५] 'ब्रज साहित्य का इतिहास' जो नवीनतम अनुसधानो के आधार पर प्रस्तुत इतिहास है, इसम डॉ० सत्येन्द्र[६] न हरिचरणदास के निम्न लिखित ग्र थो का उल्लेख किया हैं—:

---

१ ग्रियर्सन जार्ज अब्राहम (डॉ०)-हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० ३१७, ३३६, ३३७

२ मेनारिया, मोतीलाल-(अ) राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा, पृ० २३२
(ब) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४७
(स) राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४४-१४५

३. सहाय, शिवपूजन- (अ) हिन्दी साहित्य और विहार (प्रथम भाग), पृ० १७६
(आ) वही (द्वितीय भाग) पृ० ३३१

४. शर्मा, नलिन विलोचन, आचार्य—साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ० २४४, २४६

५ (अ) शर्मा, गोपाल—काल के अतराल मे डूबे हुए कवि हरिचरणदास–साहित्य सदेश (जून, १६५६)
(ब) दीक्षित, आनन्द प्रकाश, (डॉ०) हरिचरण दास और उनकी विरदावली, परिशोध (१६६६)

६ सत्येन्द्र, (डॉ०) ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ४०१

अ–टीकाएँ—(१) केशव कृत रसिक प्रिया की टीका
(२) केशव कृत कवि प्रिया की टीका
(३) विहारी सतसई की टीका
(४) महाराजा जसवंतसिंह के भाषा भूषण की टीका

आ–कोष— (१) 'कर्णाभरण'

इ–शास्त्र ग्रंथ—(१) सभा प्रकाश
(२) वृहत्कविवल्लभ
(३) भाषा दीपक

डॉ० सत्येन्द्र ने अपने इतिहास की दूसरी पाद टिप्पणी में लिखा है, 'भाषा दीपक का उल्लेख श्री शिव पूजन सहाय जी ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य और बिहार' में नहीं किया। इसी ग्रंथ में आचार्य शिवपूजन जी ने 'मोहन लीला,' 'रामायणसार' और 'भागवत प्रकाश' का और उल्लेख किया है, पर ये ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।'[1] किन्तु राजस्थान में अब इनके प्राय सभी ग्रंथ उपलब्ध हैं, इनसे कुछ और बातें भी ज्ञात होती हैं—

(अ) मोहन लीला ग्रंथ से इनके 'रामायण सार' और 'भागवत प्रकाश' नामक दो ग्रंथों का पता चलता है।

(आ) वृहत्कर्णाभरण भी कवि ने बनाया है।

'श्रुति भूपण नानार्थ की पहले रचना कीन
अनेकार्थन लिख्यो इहाँ लखि है सुकवि प्रवीन'

इससे विदित होता है कि इन्होंने 'श्रुति भूषण' ग्रंथ नामक 'अनेकार्थ नाम माला' पहले रची थी। यह 'श्रुति भूषण' भी अब उपलब्ध है।

इस प्रकार अब हरिचरणदास जी के कुल ग्रंथ ८+४=१२ हो गये हैं। एक 'लघु कर्णाभरण' भी मिला है, पर इसे स्वतंत्र ग्रंथ नहीं माना जा सकता।

हरिचरणदास की विविध रचनाओं के रचना-काल तथा अन्य बातों की जानकारी के लिये विविध ग्रंथों से पुष्पिकायें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

---

१. सत्येन्द्र, (डॉ०) ब्रज साहित्य का इतिहास पृ० ४०१

(१) कविप्रिया की टीका 'कविप्रियाभरण' मे—

ग्रथ कवि की स्थिति–दोहा

राजत सुबे विहार मैं है सारन सरकार,
सालग्रामी सुरसरित सरजू सोभ ग्रपार ।।१।।

सालग्रामी सरजू तह मिली गग सौं जाय ।
ग्रतराल मे देस सो हरिकवि को सरसाय ।।२।।

परगन्ना गोवा तहा गाव चैनपुर नाम ।
गगा सो उत्तर तरफ तह हरि कवि को धाम ।।३।।

सूरजपारी द्विज सरस वापुदेव श्रीमान् ।
ताको सुत श्री रामधन ताको सुत हरि जान ।।४।।

नवापार मे ग्राम है वढया ग्रभिजन तास ।
विश्वसेन कुल भूप वर करत राज रति मास ।।५।।

मारवाडि मे कृष्णगढ तह निति सुकवि निवास ।
भूप वहादर राज है विडद सैहै जुवराज ।।६।।

राधा तुलसी हरिचरन हरि कवि चित्त लगाय ।
तहँ कविप्रिया भरन यह टीका करी वनाय ।।६।।

सत्रह सौ छयासठि मही कवि को जन्म विचार ।
कठिन ग्रथ सूधौ कियो लैहैं सुकवि निहारि ।।८।।

× × ×

समत ठारे से विते पैंतिस ग्रधिक लेपि ।
सपि ग्रठारह सौ जबै कियौ ग्रथ हरि देपि ।।१३।।

माघ सास तिथि पचमी सुक्ला कवि कौ वार ।
हरिकवि कृत सौ प्रीत हो राधा नन्द कुमार ।।१५।।

पुरोहित श्री नन्द के मुनि सडिल्ल महान ।
हैं तिनके हम गीत मे मोहन मो जिजमान ।।१८।।

इति श्री हरिचरणदासकृत कविप्रियाभरण टीकाया
चित्रकाव्य ध्याख्या सोडसो प्रभाव सपूर्ण ।

(२) विहारी सतसई की टीका 'हरिप्रकाश टीका' में

सवत अठारह सौ विते तापर तिय अस चारि।
जन्माठे पूरी कियौ कृष्ण चरन मन धारि ।।

(३) सभाप्रकाश में–

कवि स्यिति

श्री, विसभर बस मै रामतनै हरिनाम
नवादपारे सरवार मे अभिजन वढया ग्राम

वार्त्ता – पूर्व पुरस को वास सो अभिजन कहावै कवि की नवीन

दोहा

छपरा सहर जहान मैं है सारन सरकार
कोस दसक उत्तर वसै छपरा ते लोवार
श्री सुकदेव तनै जहा चक्रपानि सुपदान
हरि कवि को मातुल वहै वहै सुविधादान
आधकोस लौवार तें ग्राम चैन पुर चारु
परगन्ना गोवा तहा हरि कवि वास विचारु ।।

वर्त्ता – इहा रस कोई नही निरस काव्य कहावे यानि रसवत काव्य लछन ।

दोहा

वेद ।।४।। इदु ।।१।। गज ।।८।। भू १ गनित सवत्सर कविवार।
श्रावन शुक्ल त्रयोदसी रच्यौ ग्रथ सुविचार ।

अत सभा प्रकाश का रचना काल १८१४ वि० गुरुवार श्रावण शुक्ल त्रयोदशी ।

(४) वृहत्करणाभरण में पुष्पिका :

अथ कवि की स्थिति—

दोहा

राजत सुबे विहार मे है सारन सरकार।
सालग्रामी सुरसरित सरजू सोभ अपार ।।३९।।

सालग्रामी सुरसरित मिली गंग सौं आय।
अतराल में देस सो हरि कवि को सरसाय ।।४०।।

परगन्ना गोवा तहा गाव चैनपुर नाम।
गगा सौ उत्तर तरफ तहे हरिकवि कौ धाम ।।४१।।

सरजूपारी द्विज सरस वासुदेव श्रीमान।
ताको सुत श्री रामधन ताको सुत हरि जान ।।४२।।

नवापार मे ग्राम है वढया अभिजन तासु।
विस्वसेन कुल भूपवर करत राज रविभास ।।४३।।

मारवार मे कृष्णगढ तिह किय हरिकवि वासु।
कोस जु कर्नाभरन यह कीनौं है जु प्रकासु ।।४४।।

श्रुतिभूपन नानार्थ की पहिलै रचना कीन।
अनेकार्थन लिख्यो इहा लखि है सुकवि प्रवीन ।।४५।।

कवित्त—

वृन्दावन वस्यो नहि राधे कान्ह रूप रच्यौ तीरथ
फिर्‌यो तो मेरे जान वे फिर्‌यो वह्यौ

भोमा सव त्यागो सौ न क्वै भाग्यौ नीर में
सयन के समीर दुप को सह्यो।

भयौ ज्यौं उदासी सही लोकन की हासी वृत्ति
राखिकें अकासी कासी मे पर्‌यो रह्यो ।।४६।।

करम की रोकन मे फिरयौ तिहु लोकन मे
भयो वे असोक रह्यो विषै बस काय है।

दयाके चितायौ तुव दास मैं कहायौ छाप
तिलक लगायौ तुम्ह देखन की चाय है।

भूलत हो काहैं चारो वेदन की साहै हरि जो
पै गही बाहैं तो निवाहे वनि आय है ।।४७।।

दोहा – बसत कृष्ण के चरण मे विघ्न हरन सुख खानि।
प्रेम भक्ति की दानि हैं तुलसी जानि ।।४८।।

रचना काल – १८३८ सवत ठारह सै विते तापर हैं अठतीस।
कीनो कर्नाभरन हरि-हृदै रापि जगदीस ।।४९।।

सवैया

भादो के सित पच्छ मे अष्टमी वालव (?) कर्ज (?) महा सुख दाई
उच्च है पच ग्रहैं अनुराधा बृहस्पति जोग मे प्रीति लखाइ
केमरी लग्न (?) प्रभात मे भानु-सुता प्रगटी रति कोटि निकाई
ताही ए द्यौस मैं पूरो कियो हरि ग्रथ कवीस को मगलदाई ।।५०।।

(५) मोहनलीला

इसकी पुष्पिका आगे दी जा रही है। इसका रचना काल-१८५३ या १ ८+५+३=१७ घटाकर १८३६ वि० अगहन वदी एकादशी होता है।

(६) कवि वल्लभ—अथ कवि की स्थिति

दोहा

नवापार सुभ देस मे राज वढैया ग्राम।
श्री विश्वभर वस मे वासुदेव तप धाम ।।७४।।

तासो सुत श्री रामघन कियो चैनपुर वास।
परगना गोआ तहा चारि वर्न स हुलास ।।७५।।

सालग्रामी सरजु की मिली गग त्यो धार ।
अतराल मे देस तहा है सारन सरकार ।।७६।।

तनय रामधन सूर को हरि कवि किय मरुवास ।
कवि वल्लभ ग्रथ हि रच्यौ कविता दोस प्रकास ।।७७।।

उदाहरन प्राचीन दै कौनै कहं नवीन ।
रच्यौ ग्रथ कौ सुगम करि लपि हैं सुकवि प्रवीन ।।७८।।

पूरोहित श्री नन्द को मुनि साडिल्य महान ।
हम हैं तिन के गीत मैं मोहन मो जिजमान ।।७९।।

इद्रादिक को देत जो सपति सो जजमान ।
तिहि तज जाचो और सुर नहिं मोसो अज्ञान ।।८०।।

सवैया

राधिका के दृग सौं सजनी समता नहिं पक्ज के दल की है ।
पजन मजुल भासत हैं न अ गूठी वको सब कज्जल की है ।
छूटि परी अलकें पलकें छुप (?) उच्च उरोजनि मे कलि है
कचन के मनु चारु पहार मे धारसी ए जमुना जल की है ।।८१।।

सवत नद ९ हुतासन ३ दिग्गज ८ इदु १ ऊ सौं गगन जु दिपाई
दूसरो जेठ लसो दसमी तिथिहि साव (?) रोच (?) छनिकाई ।
रचनाकाल १८३९ दूसरा जेठ दसमी ।

तीरत जग के औ बुधवार वि कर्मन की गति लाभ लनाई
श्री तुरसी उपकठ तहा रचना यह पूरी भई सुखदाई ।।८२।।

(७) भाषा दीपक :

सवत अठारह सौ जुचारि चालीस के ऊपर ।
भाद्रक(?) हत्र(?)तिथि अष्टमी सु दिन राज बुधवासर ।
उमर उनासी वर्ष की जु किय भाषा दीपक ।
कवक रैवढि जाय सुकवि मान सविद्या छक ।।
जिन रसिकप्रिया टीकाकरी करि बिहारी टीकादि हरि ।
तिन कियो ग्रथ तुलसी निकट राधा मोहन चित्त धरि ।।६८।।

ग्रादिय दसो 'मोहनलीला' ग्रौ 'रामायणसार' 'कविप्रिया की टीका' ग्रौ 'भाषा भूषन की टीका' ग्रौ 'सभा प्रकाश' ग्रौ 'कवि-वल्लभ' भजा ? मैं दोष गुन के निर्नय।

ग्रौ दोय कोस। 'श्रुति भूषन'। ग्रौ 'करना-भरन' भागवत प्रकास'। इतने ग्रंथ किए।

इति श्री हरिचरण दास कृतो भाषा दीपकाख्यो य ग्रंथ सम्पूर्ण।"

भाषा दीपक स० १८४४ की रचना है।

इन पुष्पिकाग्रो के ग्राधार पर कवि की स्थिति का यह रूप बनता है–

जन्म स्थान

ग्राचार्य हरिचरण दास का जन्म स्थान बिहार के सूबे मे सारन नाम की सरकार है उसमे शालिग्रामी सुरसरिता सरयू का गगा से सगम होता है। इन दोनो के ग्रतरान मे छपरा जिले के गोग्रा नाम के परगने मे चैनपुर गाँव है। यही 'चैनपुर' कवि का जन्म स्थान है। 'मिश्रबन्धु विनोद'[1] तथा 'राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य'[2] मे इन्हे कृष्णगढ (किशनगढ) का रहन वाला बतलाया गया है किन्तु डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इनकी जन्मभूमि बिहार प्रान्त का चैनपुर गाँव ही स्वीकार की है।[3] शिवपूजन सहाय जी[4] न ग्राचार्य का निवास स्थान सारन जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'चिरान' ग्राम स्वीकार किया है। ग्रधिकतर विद्वानो ने बिहार के चैनपुर गाँव को ही ग्राचार्य हरिचरणदास का जन्म स्थान स्वीकार किया है।[5]

वशावली

ग्राचार्य हरिचरण दास विश्वम्भर वश मे हुये थे। इनके पितामह का नाम वासुदेव त्रिपाठी था जो पहले नवापार देश के बढया गाँव मे रहत थे

---

१ मिश्रबन्धु-मिश्रबन्धु विनोद भाग १ (खण्ड १, २), पृष्ठ ४३२

२ मेनारिया, मोतीलाल, (डॉ०) राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य, पृ० २४७

३ वही राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४४

४ सहाय, शिवपूजन-हिन्दी साहित्य ग्रौर बिहार (भाग २), पृ० ३३२

५ (ग्र) बैराठी, कुसुम-Studies in Sanskirt & Hindi—Vol 5. 1970-71

(ब) नगेन्द्र, (डॉ०) ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ४००

(स) परिशोध, ग्र० १०-पृ० ६६

और अभिजन कहलाते थे। इनके पुत्र श्री रामधन चैनपुर मे आकर बस गये। कवि हरिचरण दास इन्ही रामधन के पुत्र थे। ये मारवाड के कृष्णगढ राज्य मे आ बसे। आचार्य की वशावली के सम्बन्ध मे सभी विद्वानो मे मतैक्य है।

जाति

हरिचरण दास जी की जाति के सम्बन्ध में श्री जगन्नाथदास रत्नाकर और विद्वद्वर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद को छोडकर सभी एक मत हैं। सभी विद्वान आचार्य को सरयूपारी ब्राह्मण और शाडिल्य गोत्र का स्वीकार करते हैं। 'कवि वल्लभ' मे 'तनय रामधन सूर' कवि ने लिखा है। इसी आधार पर प जगन्नाथ दास रत्नाकर तथा आचार्य मिश्र ने 'सूर' शब्द को 'सूरि' मानकर इन्हे जैन बतलाया है किन्तु समस्त विवरण से जो रूप प्रकट होता है, उससे ये ब्राह्मण और वैष्णव प्रतीत होते हैं।

मातुल तथा गुरु

आचार्य हरिचरण दास का बचपन अपने मामा के यहाँ व्यतीत हुआ। सारन सरकार मे छपरा शहर है। छपरा से उत्तर मे दस कोस पर लौवार नामक ग्राम है। इसी गाँव मे शुकदेव के गुणी पुत्र चक्रपाणि रहते थे। ये चक्रपाणि ही शुकदेव के मातुल (मामा) थे। यही इनके विद्या गुरु भी थे। लौवार ग्राम, चैनपुर ग्राम से आधा कोस दूर है।

बिहारी सतसई की 'हरि प्रकाश टीका' मे कवि ने लिखा है —

सेवी जुगल किसोर के प्राननाथ जी नाव।
सप्तसती तिन सौ पढी वसि सिंगारवट गाँव।२।
जमुना तट सिंगारवट तुलसी विपिन सुदेस।
सेवत सत महत जहि देषत हरत कलेस।

इसमे कवि ने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि वृन्दावन मे शृगारवट नामक स्थान यमुना तट पर है, वहाँ शृगार वट मे रहकर प्राणनाथ जी से सप्तसती पढी थी। ये प्राणनाथ युगलकिशोर के उपासक थे। अत इनके एक अन्य गुरु ये प्राणनाथ भी थे। डॉ० कुसुम बैराठी[1] हमारे उपयुक्त मत से सहमत नही हैं।

---

१ बैराठी, कुसुम (डॉ०) आचार्य हरिचरण दास व्यक्तित्व एव कृतित्व (अप्रकाशित), शोध प्रबन्ध पृ० १४

आयु

डॉ० सत्येन्द्र[१] ने 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में आचार्य का जन्म १७६६ विक्रमी तथा मृत्यु स० १८३५ मे मानी है। 'भाषा दीपक' मे स० १८४४ रचनाकाल देकर कवि ने उस समय अपनी आयु उन्यासी (७९) वर्ष की बतायी है। इससे इनका जन्म स० १७६५ मे बैठता है किन्तु 'कवि प्रियाकी टीका' मे कवि ने जन्म स० १७६६ दिया है। मृत्यु स० १८३५ मे किसी प्रकार नही मानी जा सकती है क्योकि स० १८४४ तक तो वे जीवित थे। जिस प्रकार 'भाषा दीपक' में अपनी वय का उल्लेख किया है, उससे यह आभासित होता है कि उनकी दृष्टि मे यह उनका अन्तिम ग्रंथ होने वाला था। अत इनका जन्मकाल स १७६५ तथा मृत्यु स० १८४४ के उपरान्त हुई। डॉ० कुसुम बैराठी जन्म स० १७६६ स्वीकार करती हैं।

निवास स्थान

मारवाड का कृष्णगढ इनका निवास स्थान था। यह कृष्णगढ आज का 'किशनगढ़' है। किशनगढ के राजघराने वैष्णव थे। ये राजे महाराजे तथा इनकी रानियाँ सभी काव्य-रचना मे रुचि रखते थे। अनेक कवियो को इन्होने आश्रय दिया था जिन्होंने निश्चित भाव से कृष्णगढ मे रहकर प्रभूत काव्य रचना की थी। हरिचरण दास ने इसी कृष्णगढ मे रहकर अपनी रचनाएँ निर्मित की।

आचार्य शिवपूजन सहाय का मत है कि हरिचरण दास पहले नवापार के 'बढ्या गाँव' के श्री विश्वसेन के आश्रित थे। वहाँ से ये कृष्णगढ के महाराज राजसिंह के आश्रय मे चले आये।[२] डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित का विचार है कि ये सारन जिले के 'बढिया' के जमीदार विश्वसेन के आश्रय मे कुछ काल रहने के उपरान्त वृन्दावन चले गये।[३] आचार्य के ग्रंथ 'सभा प्रकाश' तथा 'रामायण सार' से इनके कृष्णगढ मे रहने का प्रमाण मिलता है जो कि इनकी प्रारम्भिक रचनायें हैं। 'सभा प्रकाश' मे कवि ने बहादुरसिंह की अत्यधिक प्रशसा की है इससे स्पष्ट होता है कि प्रथम ग्रंथ की रचना किशनगढ के महाराजा बहादुरसिंह के आश्रय मे रह कर की :

> बैरी हिये सालते बहादुर नरेस अली,
> ऐसी जग माहि तेरी सुजस कहानी है।[४]

---

१ सत्येन्द्र, (डॉ०)–ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ४००
२ सहाय, शिवपूजन–हिन्दी साहित्य और बिहार, पृ० १७६
३ दीक्षित, आनन्द प्रकाश, (डॉ०) परिशोध (अक १०) पृ० ६६
४ सभा प्रकाश, १०

वि० स० १८३२ मे रचित 'रामायणसार' के अनुसार ये पहले किशनगढ पहुँचे।

कवि सारन सरकार को वास चैनपुर ग्राम।
मारवाड मे कृष्णगढ बस्यौ कहै हरि नाम ॥

आचार्य हरिचरण दास किशनगढ से वृन्दावन स १७३६ मे आगये थे। यह 'कवि वल्लभ' तथा 'भाषा दीपक' से अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार इन्होंने कुछ रचनायें—'सभा प्रकाश' तथा 'रामायण सार' वृहत् कर्णा-भरण कोष, प्रतापसिंह विरुदावली का सृजन किशनगढ मे किया, 'कवि प्रिया टीका' और बिहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका इन्होने वृन्दावन मे लिखी। इस प्रकार आचार्य चैनपुर, बढयाग्राम, किशनगढ तथा वृन्दावन मे रहे।

आश्रयदाता

आचार्य हरिचरण दास बढया गाँव के जमीदार विश्वसेन के आश्रय मे कुछ समय रहकर किशनगढ (मारवाड) मे चले गये। ये किशनगढ के महाराजा बहादुरसिंह एव विरदसिंह के राज्याश्रय मे रहे तथा विरदसिंह के पुत्र कुँवर प्रतापसिंह के भी यह समकालीन रहे। विद्वानो का एक वर्ग किशनगढ के महाराजा राजसिंह (बहादुर सिंह के पिता) तथा नागरीदास (बहादुर सिंह के बडे भाई) को इनका आश्रयदाता मानता है। 'सभा प्रकाश' से ज्ञात होता है कि महाराजा बहादुर सिंह इनके आश्रयदाता थे, इन्होंने बहादुर सिंह का यशोगान किया है। 'सभा प्रकाश' मे एक–दो छदो मे कुँवर विरदसिंह का यशोगान किया है। 'सभा प्रकाश' के अतिरिक्त 'प्रतापसिंह विरुदावली' मे कुँवर प्रतापसिंह के शौर्य वर्णन के साथ मे विरदसिंह नरेश का भी उल्लेख किया है। आचार्य ने विरद सिंह के राज्यकाल मे कवि वल्लभ, रसिक प्रिया की टीका, प्रतापसिंह विरदावली एव भाषा दीपक ग्रन्थो का निर्माण किया था। इस प्रकार आचार्य हरिचरण दास जमींदार विश्वसेन, महाराज बहादुर सिंह एव महाराज विरदसिंह के राज्याश्रय मे काफी समय तक रहे। इसीलिये कुँवर प्रतापसिंह के सम्पर्क मे रहने का अवसर इन्हे प्राप्त हुआ।

भक्ति

आचार्य हरिचरण दास भक्त कवि थे। इन्होंने तीन भक्ति परक रामायणसार, मोहनलीला तथा भागवत प्रकाश-ग्रन्थो की रचना की। ये राम-कृष्ण के परम भक्त थे। इस प्रकार की भक्ति भावना को देखकर इनको महान

भक्तो की श्रेणी मे स्थान दिया जा सकता है। 'मोहन लीला' तथा 'भागवत प्रकाश' मे इन्होने राधा-कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है जिसमे कहीं भी शृंगारिक चित्रण को स्थान नहीं मिल सका है। 'रामायण सार' मे ये राम के भक्त के रूप मे पाठक के समक्ष आते हैं। ये राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप के उपासक थे। इनका विश्वास है कि राधा नाम के अभाव मे कृष्ण नाम से अधूरे फल की प्राप्ति होती है—

बिन राधा फल आधा कृष्ण नाम को।

कृष्ण की उपासना नर रूप मे न करके इष्ट रूप मे की है। कृष्ण ने जन रक्षा के लिये भूलोक मे जन्म लिया है। इनमे सौन्दर्य, रक्षणशीलता, भक्तवत्सलता, कृपालुता आदि कई गुण विद्यमान हैं। बाल लीला के वर्णन मे कृष्ण की सुषमा का वर्णन प्रस्तुत है—

मातु लखै घम दातनिकी रुचि सावरी सूरति मोद बढावति।
भाई भुजा कटि छीन लसै हरि कवन किंकनी की छवि छावति।
कान्हा के पावन की सुषमा नप पाति लखै मन मे यह भावति।
बधु सौ सधि कियो मनु चाहति चदकला अरविन्द मनावति॥

हरिचरणदास ने 'रामायण सार' ग्रन्थ मे राम जन्म, बाल लीला, ताडका वध, अहिल्या उद्धार, चापभग राम आदि भ्राताओ का विवाह, राम वनगमन, सीता हरण, राम वियोग तथा अनेक राक्षसो के साथ युद्ध करने का वर्णन किया है जिसमे राम का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। आचार्य दोनो हाथ जोडकर यह कामना करते हैं कि अवधपुरी का वास मिले तथा राम के पवित्र शरीर से स्पर्श की हुई रज को अपने अग से लगा लूँ और सरयू नदी के किनारे बस जाऊँ—

यकसो मुहि ओधपुरी मैं फिरो, रघुनाथ के गुन माहि रसौं।
जग मे अनुराग तजौ सब सौं हरि लाग विरागन माहि लसौं।
रघुवीर के पावन पावन की परसी रज सैं निज अग परसौं।
कर जोर दोऊ गरजू ह्वै कहो सरजू तुर नीर के तीर बसौं॥

हरिचरणदास को वृन्दावन से अधिक प्रेम था। इसी को निवास स्थल बनाया। मोहन लीला मे अनेक स्थानों पर वृन्दावन के सौन्दर्य का चित्रण

किया। वृन्दावन की सुषमा का वर्णन करते हुए उन्हें इंद्र का महल भी कृष्ण के उपवन के आगे फीका लगने लगता है—

वास वसंत को मजुल कुंज मे गुंजल भौंर हरे सब को मन।
सुर सुता तट धीर समीर रही सुषमा गहि मानों लता तन।
हेरत मोहन की आवी धरवी सविस है कुवेर को धन।
इंद को नदन भेद लगे निरथे चष सों नद नदन को वन।।

वृन्दावन मे यमुना के निकट जहाँ कृष्ण-राधा नित्य क्रीडा करते थे, वही इनका निवास स्थान रहा—

तुलसी को सेवन मिलौ, वृन्दावन को वास।
जमुना के तट मे रहौं ह्वै राधा हरि दास।।

'तुलसी' के सम्बन्ध मे इनके विविध उल्लेख हमारा विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। जहाँ कही राधा-कृष्ण के प्रति भक्तिपरक छंदो की रचना की है वहाँ तुलसी के महत्व का प्रतिपादन अनेक स्थानो पर किया है। यथा—

वृहत्कर्णाभरण

बसत कृष्ण के चरण मे विघ्न हरन सुख खानि।
प्रेम भक्ति की दानि हैं तुलसी जानि।

रामायण सार

तुलसी को सेवन मिलौ मिलौ औध को वास।
भक्ति सियावर की मिलौ यह मो मन की आस।

भाषाभूषण टीका

तुलसी सोमती चरण मैं गल तुलसी दल माल।
विहरत राधा सग मैं जमुना तट नदलाल।

बिहारी सतसई टीका

तुलसी दल माल तमाल सो स्याम अनग तें सुन्दर रुप सुहाही ।
श्रुत कुंडल के मने कौ झलकें मुप मडल पै वरनी नही जाही ।

श्रुति भूपरग

पावन मे मनमोहन के जग पावन राजै तिहारौ विहार है ।
लोक अनेक के तारन कौं करुना कर भूमौ लियौ अवतार है ।
थोरौ भी सेवत जो तुमकौं हरि ताकौ कवै नहिं होत विगार है ।
विघ्न नसै तुलसी तुव नाम सौ जैसे अगार सौ तूल तुमार है ।

कवि वल्लभ

मोहन चरण सरोज मे तुलसी कौ है वास ।
ताहि सुमिरि हरिभक्ति सब कनत विघ्न कौ नास ।।१।।

तथा

ज्यौं चाहौ भव भय मिटैं भजो सदा गोविन्द ।
हरि हू तारन तुलसि दल पाउ करौ आनन्द ।।६७।।

भव जल पार करो तुलसी यह तुव सहज सुभाव ।
देख्यौ जग मे नव तिरै बैठि काठ की नाव ।।६८।।

ग्रंथ उल्लेख

'भाषा दीपक' में कवि ने स्वयं अपनी निम्नलिखित रचनाओ का उल्लेख किया है—

(१) रसिक प्रिया की टीका
(२) बिहारी सतसई की टीका (रचना काल–१८३४)
(३) मोहन लीला (रचना काल–१८३३ या १८१९)
(४) रामायन सार
(५) कवि प्रिया की टीका (रचना काल–१८३५)
(६) भाषा भूपन की टीका

मानव का एक चित्र उपस्थित करना है। भाषा सहज सौन्दर्य एव लालित्य को लिये हुये है, जिसमे सयुक्त वर्ण कम मात्रा मे मिलते हैं।

(३) रामायण सार

'रामायण सार' कवि की तृतीय रचना है। जगदीश के यशगान के लिये 'रामायण सार' की रचना की थी। ग्रथ मे रचना काल निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है —

सवत अठारह सौ वितै तापर वरष वत्तीस।
जेठ मास सुदि पचमी वरन्यौ जस जगदीश॥

अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल पचमी, स० १८३२ को इस ग्रथ का प्रणयन हुआ। इस ग्रन्थ मे 'वाल्मीकि रामायण' का सार निहित है। ग्रन्थ के आरम्भ मे राम की स्तुति ६ छदो मे की गयी है। राम के जन्मोत्सव से कथा का प्रारम्भ किया गया है। इसमे बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काड, लका काण्ड तथा उत्तर काड की कथाओ का वर्णन किया है। इसका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—

बाल ओधवन काड कहि। कह्यो किकिंधा वास।
सुन्दर लका काड कहि, उत्तर कह्यो प्रकास॥

'रामायण सार' मे कथा काण्डों मे विभक्त नहीं है किन्तु कथा को प्रारम्भ करने से पूर्व ही उस प्रसग की चर्चा करदी है तथा यत्र तत्र कथा को गद्य मे लिखकर उसका विस्तार कर दिया है।

(४) 'बिहारी सतसई टीका (हरि प्रकाश)'

इस ग्रन्थ का प्रणयन हरिचरणदास ने भाद्रपद की कृष्ण जन्माष्टमी को स० १८३४ मे किया। कवि ने लिखा है, 'वार्ता पुरुषोत्तम दासजि को वाध्यों क्रम है॥ ताके अनुसार टीका ....।" अर्थात् बिहारी के दोहों को सुनिश्चित योजनाबद्ध रूप पुरुषोत्तमदास जी ने प्रस्तुत किया। इसी क्रमबद्ध रूप से आचार्य हरिचरण दास ने दोहो की व्याख्या की। 'हरिप्रकाश' टीका मे ७१४ दोहों की विस्तृत व्याख्या सरल एव साहित्यिक प्रसगो के साथ टीका को गद्य मे प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के आरभ मे राधा-कृष्ण की वन्दना पाँच दोहो मे करने के पश्चात् ५ दोहो मे कवि की स्थिति का वर्णन किया है। ७१४ दोहो की व्याख्या कर कवि ने अपने परिचय के साथ अपने गुरु का उल्लेख किया है जिनसे बिहारी सतसई पढी थी। इन

दोहों की विवेचना काव्य शास्त्रीय पक्ष के आधार पर अनेक अर्थों को समझाते हुए की है। इस टीका मे अलकार के भेद-उपभेदो का निरूपण अनवर चद्रिका के अनुसार प्रस्तुत किया है—

लिखे इहां भूषन बहुत अनवर के अनुसार ।।
कहु औरे कहुँ और हु निकरेंगे लकार ।।

(४) भाषा भूष टीका (अलकार चद्रिका)'

'भाषा भूषण' महाराजा जसवंतसिंह द्वारा रचित अलकारिक प्रसिद्ध एव उपयोगी ग्रन्थ है। 'भाषा भूषण' जयदेव कृत 'चन्द्र लोक' से प्रभावित है किन्तु आचार्य ने इसमे अन्य सस्कृत ग्रन्थो से सहायता ली है। 'भाषा भूषण' की अनेक टीकायें प्रस्तुत की गयी हैं जिनम हरि कवि कृत 'अलकार चन्द्रिका' प्रसिद्ध है। ग्रन्थ के अन्त मे भाषा भूषण टीका का रचना काल बताते हुए कवि ने लिखा है—

सवत् अठारह सौ बितै तापर चौतिस जान ।
टीका कीनी पूस दिन गुरु दशमी अवदान ।।

अर्थात् स १८३४ के पौष माह की दशमी, गुरुवार को यह टीका की गयी। ग्रन्थ के आरम्भ मे राम एव गणेश को स्मरण करके ४ पद्यो मे राधा-कृष्ण के भक्ति परक पद्य गाये हैं, तत्पश्चात् कवि ने 'चद्रलोक' एव अन्य सस्कृत ग्रन्थो का आधार मानकर 'भाषा भूषण' की टीका प्रारम्भ की है। ग्रन्थ के प्रारम्भ म वर्णित रस प्रकरण की टीका नही की है क्यो कि यह रस प्रकरण परम्परागत है। अत 'भाषा भूषण टीका' म अलकारो का ही विवेचन है। टीका गद्यात्मक है एव मूल पाठ तथा बिहारी, मतिराम के दोहे पद्य मे वर्णित हैं। इस ग्रन्थ मे कुल २०५ दोहो मे अलकारो की विवेचना की है। अन्त के ७ दोहों मे कवि परिचय एव ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है।

(६) कवि प्रिया टीका (कवि प्रियाभरण)

केशव न 'कवि प्रिया' की रचना कवि शिक्षा के लिये की थी। 'कवि प्रिया को हिन्दी का प्रथम काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ माना गया है और इसकी अनेक कवियों ने टीकायें की, इनम आचार्य हरिचरण दास की टीका प्रसिद्ध है। इसकी रचना स० १८३५ म माघ मास की शुक्ल पचमी को हरि कवि ने राधा नद कुमार से प्रीति रख कर की। ग्रन्थ के आरम्भ म गणेश को स्मरण कर गुरु के चरण कमलों म प्रणाम किया है फिर राधा कृष्ण की विनती ७ पद्यों मे की है। कवि प्रिया १६ प्रभावों—राजवश वर्णन, कवि वश वर्णन, कवित्त

मानव का एक चित्र उपस्थित करना है। भाषा सहज सौन्दर्य एव लालित्य को लिये हुये है, जिसमे सयुक्त वर्ण कम मात्रा मे मिलते हैं।

(३) रामायण सार

'रामायण सार' कवि की तृतीय रचना है। जगदीश के यशगान के लिये 'रामायण सार' की रचना की थी। ग्र थ मे रचना काल निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है —

सवत अठारह सौ वितै तापर बरष बतीस।
जेठ मास सुदि पचमी वरन्यौ जस जगदीश ।।

अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल पचमी, स० १८३२ को इस ग्र थ का प्रणयन हुआ। इस ग्रन्थ म 'वाल्मीकि रामायण' का सार निहित है। ग्रन्थ के आरम्भ मे राम की स्तुति ६ छदो मे की गयी है। राम के जन्मोत्सव से कथा का प्रारम्भ किया गया है। इसम बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काड, लका काण्ड तथा उत्तर काड की कथाओ का वर्णन किया है। इसका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—

बाल ओधवन काड कहि। कह्यो किकिधा वास।
सुन्दर लका काड कहि, उत्तर कह्यो प्रकास ।।

'रामायण सार' मे कथा काण्डो म विभक्त नहीं है किन्तु कथा को प्रारम्भ करने से पूर्व ही उस प्रसग की चर्चा करदी है तथा यत्र तत्र कथा को गद्य मे लिखकर उसका विस्तार कर दिया है।

(४) 'बिहारी सतसई टीका (हरि प्रकाश)'

इस ग्रन्थ का प्रणयन हरिचरणदास ने भाद्रपद की कृष्ण जन्माष्टमी को स० १८३४ मे किया। कवि ने लिखा है, 'वार्ता पुरुषोत्तम दासजि को बाध्यों क्रम है ।। ताके अनुसार टीका ... ...।" अर्थात् बिहारी के दोहो को सुनिश्चित योजनाबद्ध रूप पुरुषोत्तमदास जी ने प्रस्तुत किया। इसी क्रमबद्ध रूप से आचार्य हरिचरण दास ने दोहों की व्याख्या की। 'हरिप्रकाश' टीका मे ७१४ दोहो की विस्तृत व्याख्या सरल एव साहित्यिक प्रसगो के साथ टीका को गद्य मे प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के आरम मे राधा-कृष्ण की वन्दना पाँच दोहो मे करने के पश्चात् ५ दोहो म कवि की स्थिति का वर्णन किया है। ७१४ दोहो की व्याख्या कर कवि ने अपने परिचय के साथ अपने गुरु का उल्लेख किया है जिनसे बिहारी सतसई पढी थी। इन

दोहो की विवेचना काव्य शास्त्रीय पक्ष के आधार पर अनेक अर्थों को समझाते हुए की है। इस टीका में अलकार के भेद-उपभेदो का निरूपण अनवर चद्रिका के अनुसार प्रस्तुत किया है—

लिखे इंहा भूषन बहुत अनवर के अनुसार ।।
कहु औरे कहुँ और हु निकरेंगे लकार ।।

(४) 'भाषा भूष टीका (अलकार चद्रिका)'

'भाषा भूषण' महाराजा जसवतसिंह द्वारा रचित अलकारिक प्रसिद्ध एव उपयोगी ग्रन्थ है। 'भाषा भूषण' जयदेव कृत 'चन्द्र लोक' से प्रभावित है किन्तु आचार्य ने इसमे अन्य सस्कृत ग्रन्थो से सहायता ली है। 'भाषा भूषण' की अनेक टीकायें प्रस्तुत की गयी हैं जिनमे हरि कवि कृत 'अलकार चन्द्रिका' प्रसिद्ध है। ग्रन्थ के अन्त मे भाषा भूषण टीका का रचना काल बताते हुए कवि ने लिखा है—

सवत् अठारह सौ बितै तापर चौतिस जान ।
टीका कीनी पूस दिन गुरु दशमी अवदान ।।

अर्थात् स १८३४ के पौष माह की दशमी, गुरुवार को यह टीका की गयी। ग्रन्थ के आरम्भ मे राम एव गणेश को स्मरण करके ४ पद्यो मे राधा-कृष्ण के भक्ति परक पद्य गाये हैं, तत्पश्चात् कवि ने 'चद्रलोक' एव अन्य सस्कृत ग्रन्थो को आधार मानकर 'भाषा भूषण' की टीका प्रारम्भ की है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वर्णित रस-प्रकरण की टीका नही की है क्यो कि यह रस-प्रकरण परम्परागत है। अत. 'भाषा भूषण टीका' मे अलकारो का ही विवेचन है। टीका गद्यात्मक है एव मूल पाठ तथा बिहारी, मतिराम के दोहे पद्य मे वर्णित हैं। इस ग्रन्थ मे कुल २०५ दोहो मे अलकारो की विवेचना की है। अन्त के ७ दोहो मे कवि परिचय एव ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है।

(६) कवि प्रिया टीका (कवि प्रियाभरण)

केशव ने 'कवि प्रिया' की रचना कवि शिक्षा के लिये की थी। 'कवि प्रिया को हिन्दी का प्रथम काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ माना गया है और इसकी अनेक कवियो ने टीकायें की, इनमे आचार्य हरिचरण दास की टीका प्रसिद्ध है। इसकी रचना स० १८३५ मे माघ मास की शुक्ल पचमी को हरि कवि ने राधा नद कुमार से प्रीति रख कर की। ग्रन्थ के आरम्भ मे गणेश को स्मरण कर गुरु के चरण कमलो मे प्रणाम किया है फिर राधा कृष्ण की विनती ७ पद्यों मे की है। कवि प्रिया १६ प्रभावो—राजवश वर्णन, कवि वश वर्णन, कवित्त

दूषन वर्णन, कवि व्यवस्था वर्णन श्वेत आदि वर्णालकार वर्णन, भू श्री वर्णन, राज्य श्री वर्णन के पश्चात् ६, १०, ११, १२, १३, १४ प्रभावों में अलकार विवेचन को प्रस्तुत किया है। नखसिख वर्णन एव चित्र काव्य वर्णन १५ और १६ प्रभाव मे हुआ है। अन्त म १६ पद्यो मे कवि परिचय तथा कृष्ण राधा की स्तुति की गई है। आचार्य हरिचरणदास ने 'नाट्य शास्त्र', कोकशास्त्र, अनेकार्थ सग्रह कोश आदि ग्रथो से कवि प्रिया की व्याख्या करने मे सहायता ली है।

(७) श्रुति भूषण

हरिचरणदास कृत 'श्रुति भूषण' की जो प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है। इसमे दो काड एव ८६ छद है, प्रथम काण्ड मे ३६ एव द्वितीय काण्ड म यान्त स्वर तक ५३ छद वर्णित हैं। कोष का सृजन सवैया, दोहा, छप्पय एव कवित्त मे हुआ है। श्रुतिभूषण पर अनेकार्थ सग्रह का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है किन्तु इसमे उससे अधिक शब्दो का सकलन है। प्रारम्भ के ६ पद्यो मे कृष्ण राधा की वन्दना करने के पश्चात् दो दोहो म कोष रचना का कारण स्पष्ट किया है। प्रथम काण्ड मे अकार से सकार तक के वर्णों के पर्यायवाची नाम का उल्लेख है। अकार के पर्याय निम्न प्रकार प्रस्तुत किये गये है—

हरि १ विधि २ शभु ३ कमठ ४ उमा ५ इत माँहि अकार।
अतराल ६ पुन जनन ७ रन ८ जो निषेध ६ सुविचार ॥६॥

द्वितीय काण्ड मे क वर्ग से म वर्ग तक दो स्वर वाले शब्दो के पर्याय कान्त खान्त आदि के अनुक्रम से दिये गये हैं। कान्त स्वर का द्विअक्षरीय पर्याय इस प्रकार प्रस्तुत किये गये है—

अर्क ० आक १ रवि २ सन ३ फटिक ४ ताँबो ५ पुन कहियत।
अक ० कल्मष १ पुपर अक चिन्ह १ अपराध २ भूषण २ सत ॥

(८) वृहद् कर्णाभरण कोष

इस ग्रन्थ मे मूल श्लोको की सख्या ३८३ है जो दोहा, सवैया, कवित्त छप्पय आदि छदो मे शब्दो को पद्य मय रूप म प्रस्तुत किया गया है, इसके अतिरिक्त गद्य मे भी यत्र-तत्र टिप्पणियाँ दी गयी हैं। यह कोष 'अमर कोष' से प्रभावित होते हुये भी इसमे 'मेदिनी' एव 'हेमकोश' से सहायता ली गयी है। अमरकोष के आधार पर यह तीन काण्डो मे विभाजित है, प्रथम काण्ड दस वर्गों मे क्रमश स्वर्ग वर्ग मे ४६, व्योम वर्ग मे २, दिग् वर्ग मे २२, काल वर्ग

में १७, धी वर्ग मे ३, शब्दादि वर्ग मे १०, नाट्यवर्ग मे १८, पाताल वर्ग मे ७, नर्क वर्ग मे ए९ एव नारि वर्ग मे १३ श्लोक आये हैं।

द्वितीय काण्ड के भूमि वर्ग मे ६ पूर वर्ग मे १०, शैल वर्ग मे ५, वनौषधि में १३, सिंहादि वर्ग मे १४, मनुष्यादि वर्ग मे २६, ब्रह्मवर्ग मे ७, क्षत्रिय वर्ग मे ३६, वैश्य वर्ग मे २० एव शूद्र वर्ग मे २० श्लोक हैं।

तृतीय काण्ड के विशेष्य निघ्न वर्ग मे २१, सकीर्ण वर्ग मे ४, नानार्थ वर्ग मे ४, अव्यय वर्ग मे ८ श्लोक हैं तथा वृषभानु तथा नन्द की वशावली देने के उपरान्त राग एव ताल के भेद ३१ छदो मे दिये गये हैं, अन्त मे कृष्ण राधा की वन्दना करने के पश्चात् कवि परिचय एव रचनाकाल दिया है। इस कोष मे एक-एक शब्द के ४३, ६४, १०७ सख्या तक पर्याय दिये गये हैं।

हरिचरणदास ने अनुपयुक्त शब्दो को त्याग ने के साथ ही साथ अन्य उपयोगी शब्दो का सकलन अन्य ग्रन्थो एव कोषों से किया है। कवि ने पर्याय शब्दो को पद्यमय रूप देने के लिये इन्हे घटाया बढ़ाया भी है, इसके लिये कवि ने लिखा है—

इहा सुकात वहुत समार्येव के लिये अनर्थक भी कहेगे ।।

सम्बन्ध शब्दो या सक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ–अरु मे स्थान पर—'रु'।

वर्णों की व्यवस्था इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है—क वर्ग मे से खकार का, ट वर्ण मे से णकार का, तालव्य के शकार का, सयोगी शब्द के क्षकार का कोष मे से लोप कर दिया गया है—

> क वर्गीय खकार इहा न टवर्गीय णकार।
> नहि तालव्य शकार है सयोगी न क्षकार।।

किन्तु इन वर्णों के स्थान पर अन्य वर्णों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—ख=ष, ण=ण, श=प, क्ष=प। प वर्ण का प्रयोग अनेक वर्णों के स्थान पर किया गया है।

आचार्य हरिचरणदास का एक 'लघु कर्णाभरण कोष' और उपलब्ध है। सम्भव है वृहत् कर्णाभरण को व्यवहारिक तथा उपयोगी बनाने के लिये इसका लघु रूप तैयार किया हो।

इस कोष मे २८२ छद हैं जो दोहा, कवित्त, सवैया आदि छंदो में निर्मित हैं। प्रारम्भ मे राधा-कृष्ण की स्तुति की गई है। इसके पश्चात् कोष

को तीन काण्डो में विभाजित किया है जो वृहत् कर्णाभरण के अनुरूप है किन्तु प्रथम काण्ड मे नर्क वर्ग एव तृतीय काण्ड मे वृषभानु एव नद की वंशावली दी गई है—इन अशो का लघु सस्करण मे वर्णन नहीं किया है। इसमे वृहत् कोष की भाँति टिप्पणियाँ नही दी गयी हैं तथा शब्दो का सकलन कम है।

(९) कवि वल्लभ

आचार्य हरिचरणदास ने 'कवि वल्लभ' की रचना काव्य दोषों की शिक्षा के लिये की थी—

कवि वल्लभ ग्रन्थ हि रच्यौ कविता दोष प्रकास।

ग्रथ के प्रारम्भ मे गणेश स्मरण करने के पश्चात् राधा-कृष्ण की स्तुति की है। फिर पाँच दोष—पद दोष, पदाश दोष, वाक्य दोष, अर्थ दोष, एव रस दोष का वर्णन किया है। इसमे ७ परिच्छेद हैं और ५०० दोहे, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छद हैं। इसमे गद्य का प्रयोग किया गया है। पहले दोष का लक्षण दिया है फिर स्वरचित ग्रन्थो से तथा बिहारी सतसई, रसिक प्रिया, कवि प्रिया आदि ग्रन्थो के उदाहारण दिये हैं उनमे प्राप्त काव्य दोषो को स्पष्ट किया है साथ ही वार्तायें दी हैं जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाय। उदाहरणार्थ-गतसस्कृति दोष निम्न प्रकार बताया है—

सब्द सुद्ध नहिं होत हैं नहिं ह्वै अर्थ प्रतीत।
गत सस्कृति ताको कहैं दोष बीज यह रीत।

उदाहरण दोहा—

किन प्यालीन मे लाल तुम लगे मानल्यौ साँच फूर।
ग्वाल रचै जन माल सब गए नैच को दूर॥

सुप मे फूर नाय साच को कहै हैं। नैचकी को अर्थ उत्तम गईया। टीका॥ गई चाहिए निस्य दोष है। गुण नही होत है। नित्य दोष कवि को वाछित अर्थ नहीं समुझावै हैं। नित्य दोष को लच्छन आगे कहैंगे। गए सब पुरष बोधक है स्त्री का बोधक नहीं॥

आचार्य को ब्रजभाषा के अतिरिक्त फारसी, सस्कृत, तुर्की, गौड देश की भाषा, मारवाडी आदि भाषाओं का ज्ञान था। अपने तुर्की तथा फारसी

थे लिखे ग्रन्थों की ओर संकेत करते हुये लिखा है—ग्रौरि तुरकी हमारो कियो तुरकी प्रकास प्रसिद्ध हैं हमारो किया कवि चातुरी तामे पारसी देख लेऊगें। ये ग्रंथ उपलब्ध नही हैं।

(१०) रसिक प्रिया की टीका (रसिक ललतिका)

केशव ने 'रसिक प्रिया' में नायक-नायिका भेद एव रस भेदों का वर्णन किया है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से केशव की रचनाओ मे यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'रसिक ललतिका' से पूर्व सरदार कवि, सूरति मिश्र आदि ने टीकायें लिखी हैं। 'रसिक ललतिका' विद्वानो के समक्ष नही आ पाई है। अत सरदार कवि की 'सुख विलासिका' को 'रसिक प्रिया' की सर्व श्रेष्ठ टीका मानते हैं।

आचार्य हरिचरणदास ने इसका रचना काल नहीं दिया है किन्तु इसमे "कवि वल्लभ' तथा 'कर्णाभरण' के पद्य सम्मिलित हैं, इसलिये इसे सं० १८३६ के बाद की रचना मानना पड़ेगा।

'रसिक ललतिका' मे १६१ श्लोको की व्याख्या है। प्रथम ५ छदो मे कृष्ण राधा की स्तुति करने के पश्चात् 'रसिक प्रिया' के प्रभावो का विषय विवेचन किया है। प्रथम प्रभाव मे नव रस मे शृगार का नायकत्व, शृगार के भेद, सयोग वियोग, द्वितीय प्रभाव मे नायक भेद वर्णन, तृतीय प्रभाव मे नायक-नायिकाओ की विभिन्न चेष्टायें एव उनके विभिन्न मिलन स्थान, षष्ट प्रभाव मे नायक-नायिका हाव- भाव वर्णन, सप्तम प्रभाव मे अष्ट नायिका, सयोग शृगार वर्णन, अष्ट प्रभाव मे विप्रलम्भ एव पूर्वानुराग का विस्तृत विवेचन, नवम मे मान के भेद, दसवें मे मान-मोचन वर्णन, ग्यारहवें में विप्रलम्भ शृगार, करुण प्रवास वर्णन, बारहवें मे सखी वर्णन, तेरहवें मे सखी कर्म, चौदहवें मे नवरस वर्णन, पन्द्रहवें मे वृत्ति वर्णन तथा अन्तिम षोडश प्रभाव मे अनरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

कवि ने रसिक प्रिया की व्याख्या ही नही की है किन्तु केशव के छदो में प्राप्त अशुद्धियो का उल्लेख भी किया है। शब्दो को सरल एव स्पष्ट करने के लिये 'कर्णाभरण' एव 'श्रुति भूषण' से उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आचार्य ने नाट्य शास्त्र, साहित्य दर्पण, अमर कोष, अनेकार्थ सग्रह कोष आदि ग्रन्थो के अध्ययन के पश्चात् रसिक प्रिया की टीका की है। साहित्यिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण टीका है।

(११) प्रतापसिंह विरुदावली

इस ग्रन्थ मे किशनगढ के महाराजा विड़दसिंह के पुत्र प्रतापसिंह का यश वर्णन, दानशीलता एव शौर्य प्रदर्शन, प्रशस्तिगान प्रस्तुत किये गये हैं।

'भाषा दीपक' पर 'साहित्य दर्पण' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। हरिचरणदास ने काव्य लक्षण इस ग्रन्थ में लिए हैं और भाषा दीपक की रचना की है क्योंकि इनका लक्ष्य तो तत्कालीन काव्य को पूर्ण प्रदत्त संस्कृत काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप ढालना था न कि नवीन सिद्धान्तों की स्थापना करना।

(१३) मोहन लीला

हरिचरण दास की कृतियों की अब तक जो चर्चा हुई है, उसमें प्राय यह कहा गया है कि 'मोहनलीला ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। हमारे संग्रह में मोहनलीला ग्रंथ है। उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

ग्रन्थ—मोहन लीला ग्रन्थ।

रचनाकार—श्री हरिचरण दास।

रचनाकाल—राम हुतासन गज ससी संवत माहि घटाय।
सेष रहे सो ग्रन्थ को सन वत्सर ठहराय।

लिपिकाल—संवत् १८५६ श्रा० बदी १० शनिवार।

विवरण पोथी—यह पोथी ६"×१०" चौडी लम्बी है और चारों ओर १½ का हाशिया छूटा हुआ है। एक हाथ की मोटी कलम की अति सुन्दर शुद्ध लिखावट है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ है तथा प्रत्येक पंक्ति में १३ से १६ अक्षर हैं। यह पूरा ग्रन्थ ५४ फोलियों में समाप्त होता है। किसी समय यह पोथी सजिल्द होगी। इस समय जिल्द नहीं है और सिलाई भी नहीं है। रचना पूर्ण है। रचना चिकने मोटे कागज पर लिखी है।

विषय विवरण—यह ग्रन्थ श्री हरिचरण दास द्वारा रचा गया है। कवि ने अपने इस ग्रन्थ में भागवत् दशम् स्कन्ध की लीलाओं को भाषा में प्रकट किया है, अपनी भक्ति भावना तथा काव्य कल्पना द्वारा श्री कृष्ण की बाल लीलाओं को एक आकर्षण रूप दे दिया है। सम्यक् ग्रन्थ के रूप में रचना आरम्भ होती है। हरिचरणो की ग्रन्थारम्भ में वंदना करता है तदनन्तर बाल कृष्ण मुरलीधारी, समुद्र की छवि का वर्णन करता है, इसके बाद कालिंदि नंदिनी की स्तुति है, फिर वृन्दावन वर्णन और इसके बाद शान्त रस का सवैया दिया है जिसमें कृष्ण प्रेमरहित जीवन को धिक्कारा है। इसके बाद कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन है। ७ वें छंद के बाद 'कृष्ण जन्मोत्सव' के छंद चलते हैं, जो छंद संख्या १२ पर समाप्त होते हैं। इसके बाद निम्नलिखित प्रसंगो पर रचना में कृष्ण लीला प्रकट की जाती है—'पूतना का प्रसंग' ४,

सकटा सुर वध १ तृनावर्ई वध १, जसोदा को सम्पूर्ण विश्व मुख मे दिखायो १, भदवा सुद अष्टमी प्रात समै श्री राधिका जी को जन्मोत्सव ४, जसोदा एकादसी जल पूजन १, नामकरण १।

बाल लीला—३ दिठोना वनने १५, उराहनौ, वतीसा, मृतिका-भच्छन, दामोदर लीला, बृजदेवी सब श्री कृष्ण को नचावें, वृन्दावनागमन, वृन्दावन वर्णन, वत्सासुर वध, बकासुर वध, भादौ वदी द्वादशी सौ बछरा चराये वे लगे, छाक लीला, अघासुर वध, वत्स हरन, ब्रह्म स्तुति, गौ चारण लीला, कार्तिक सुदी अष्टमी को नन्द जी श्री कृष्ण को गाय चरायवे को पठाये, धेनुक वध, कालीय लीला, दावाग्नि पान। छद सख्या ६० तक ऊपर लिखे क्रम मे कृष्ण लीला का वर्णन किया है, फिर लीला मे आगे ऋतु वर्णन चलता है—वसत वर्णन, ग्रीष्म वर्णन, वरषा वर्णन, सरद ऋतु वर्णन, सिसिर ऋतु वर्णन, वसत पचमी, होरी, ऋतु वर्णन मे ही कृष्ण लीला चलती है। यहाँ भागवत की कथा से अन्तर है, जिसको कवि ने स्वय कहा है। प्रलब वध, वेनु गीत, चीर हरन, द्विजपत्नी प्रसग, गोवर्धन धारण, नन्द जी को वरुण के दूत ले गये, गोपिन को मोरछान दिखाये, रास लीला, तुलसी जी सो पूछे है, जल केलि, सुदर्शन जच्छ को प्रसग, सखचूड को वध, जुगल गीत, अरिष्टासुर वध केसी वध, योगासुर वध। अक्रूर आगमन, मल्लजुद्ध, कस वध। यहा 'इति' लिखा है अर्थात् कस का वध तक लीला चलती है। इसके बाद कृष्ण स्मृति सम्बन्धित नन्द के विचार है तथा कृष्ण लीला का व्यापक माहात्म्य प्रकट किया गया है। कवि ने विरह की विशेषता बताई है। अन्तिम छद मे कवि ने राम रघुराई की स्तुति की है और अन्त मे याचना के पद हैं, जिसमे कृष्ण भक्ति चाही गई है तथा मुक्ति का निरादर किया गया है। अन्त मे, कुल एव जन्मभूमि का परिचय है।

कवि ने ऊपर लिखे हुए प्रसगो से युक्त कृष्ण लीला का विस्तृत वर्णन किया है। कथा भागवत दशम् स्कन्ध के अनुसार ही है, कही कुछ भेद भी क्रम मे कर दिया है। जैसे—ऋतु वर्णन के बाद प्रलब वध का वर्णन; भागवत मे प्रलब वध पहले है, कवि ने इसका उल्लेख कर दिया है।

हरिचरणदास जी ने दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त, मनहरण, पद्धरी आदि मे रचना की है। कुछ एक स्थानो पर प्रसग समझाने के लिये गद्य वार्ता भी दी है। भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। बाल वर्णन अति मनोहर तथा स्वाभाविक बन पडा है। भाव-भाषा की दृष्टि से यह रचना अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भाषा सरल साहित्यिक है। कल्पना शक्ति के कारण सुन्दर चित्र

खिचे हैं। रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। ग्रन्थ म कवि ने अपने दूसरे ग्रथो के ऐसे पद्य भी दिये हैं, जो प्रसग के अनुकूल हैं। उनका उसने उल्लेख किया है। उसने भागवत प्रकाश, सभा प्रकाश और रामायण सार के पद्य दिये हैं, भागवत प्रकाश के ७, सभा प्रकाश और रामायण सार के एक एक। इनसे कवि के इन तीन ग्रन्थों की ओर भी ध्यान जाता है। कवि न सम्प्रदाय के अनुसार यमुना स्तुति की है और साथ ही वृदावन का वर्णन भी किया है। ये बातें कवि के सम्प्रदाय की ओर सकेत करती है। सम्पूर्ण रचना १८६ छदो मे है।

उदाहरण :

प्रारम्भ

दोहा

तोरथ सब जिन मँहि वसत व भव सागर की नाव।
सो तुलसी हरि पगु वसै। वसौ मु मो हिय पाव।।

सवैया

माल गलै तुलसी दल की
नद लाल लिए मुरली विहरे वन।
प्रान पिया के हिया कौं हरे हंसि
होति पुसी ललितादि सपीगन।।
देपत ही हग लागि रहैं
अनुराग गहैं तजि काज सबै मन।
वान कटाछ कमान सी भौंह
अगन के चारू निपग विलोचन।।

जमुना स्तुति का आधा कवित्त

जाकी धार होति तरवारि कर्म बधन कौं
लागत न वार भव [पार जात जानी मैं।
छुवै नैंकु नीर पावै पुन्य कौ सरीर
पाप रहै एकौ मासा न वतासा जैसे पानी में।।

वृन्दावन वर्णन :

कूजत कोकिल के गन कुंज मे
मत्त-मधुव्रत गुंज सुहायौ।
चारु लता लपटी तरु सौं
सुकिधौं तरुनी पिय कंठ लगायौ।
धार लपै जमुना जल की
चहु ग्रोर विचार इहै चित आयौ।
नीलम की रचि हार मनौं
करतार लै श्री बन कौ पहिरायौ।।

५२ वां पद :

धाम विलोकि कैं सूनौ घसे घनस्याम
उतार लई दधि की थरि।
घेर लियौ घर ही मे तबैं
सब गोपनि की वनितानि मनौ करि।।
जोर चलै नहि नंद किसोर कौ
डारी मही तब ही कर कौ भरि।
आपि मे छाछि की बूंद परी
सब मूंदि रही दृग कूद गए हरि।।

अंतिम :

विदा देत हरि नंद को जो दुप उपज्यौ आय।
पाहन तें हूं कठिन हिय तासौं वरन्यो जाय।।
हरि बिन नंद निहारि व्रज बाढयौ विरह अपार।
मोहन के गुन गाव ही निसदिनि ग्वारि गुवार।।
भासैं सुप नहिं विरह मैं कहत प्रवीन सवाद।
गूढो एकही को लगैं एकहि होत प्रसाद।।

× × × ×

कह्यौ दसम अनुसार क्रम घटि वढि कै कहुँ कौन।
जहा वचन जाको यनैं लैहैं लाय प्रवीन।।

मोहन लीला ग्रन्थ को पढै सुनै जो कोय।
सब सुप अवनी में मिलै सखा कान्ह को होय ॥

× × × ×

माली दरजी कौं दई मुक्ति मजूरी कान।
प्रेम भक्ति द्यौ मैं नही चाहत हौ निरवान ॥
मोहन लीला ग्रन्थ रचि मैं माग्यौ ललचाय।
जहा कहूँ मो जन्म ह्वै यह न भूलो हरिराय ॥

× × × ×

परगन्ना गोग्रा जका है सारनि सरकार।
गाव चैनपुर में वसै हरि कबि को परवार ॥
मारवाड में कृष्णगढ कियौ सुकवि सुपवास।
मोहन लीला ग्रन्थ को तहा कियौ परकास ॥
सुकवि रामधन को तनय हरि कवि है तह नाम।
अगहन बदि एकादसी बरन्यौ गुन घनस्याम ॥
राम हुतासन गज ससी सवत माहि घटाय।
सेप रहै सो ग्रन्थ की गन वत्सर ठहराय ॥

अतिम पक्तिया लिपिकार द्वारा लिखित :—

इति हरिचरण दास कृत मोहन लीला सम्पूर्ण ॥ १ ॥
मीति श्रावण वदि १० शनिवारे सवत १८५६ का ॥ २ ॥

लिपत कृष्ण गढ मध्ये ॥ सुभमस्तु ॥

कवि ने यह रचना कब की इस बात को ऊपर दिये शब्दो से जानना है। 'राम हुतासन गज ससी' के अनुसार रचना काल सवत् १८३३ होता
३ ३ ८ १
है, लेकिन ऊपर के पद मे 'सवत् महि घटाय' घटाय का अर्थ सवत् बनाने का हो सकता है, परन्तु 'शेप रहै' कहने के कारण 'घटाय का अर्थ घटाना होगा।

लेकिन प्रश्न होता है कि क्या घटाया जाय ? मेरे विचार से पहले सवत् घटा लें (बना ले) फिर उसमे से राम हुतासन गज ससी १५ घटावें अर्थात्

३ +३ +८+१

१८३३ - १५=१८१८ इस प्रकार से सवत् १८१८ रचनाकाल हो सकता है। इस हिसाब से यह प्रति रचना के ३८ वर्ष बाद लिखी गयी है और यदि सवत १८३३ माना जाय तो यह प्रति रचना के २३ वर्ष बाद की प्रथम सुन्दर प्रति है।

———

मोहन लीला

मोहन लीला

। श्री राधाकृष्णौ विजयेते तमाम् ।

अथ मोहन लीला लिख्यते । दोहा ।

तीरथ सब जिन मँहि बसत ।। भव सागर की नाव ।।
सो तुलसी हरि पगु बसैं ।। बसो सु मो हिय पाव ।।१।।

सवैया ।।

माल गलें तुलसी दल की नद लाल लिए मुरली बिहरें बन ।
प्रान पिया के हिया कों हरें हसि होति पुसी ललितादि सपीगन ।।
देपत ही दृग लागि रहे अनुराग गहै तजि काज सबै मन ।
बान कटाछ कमान सी भौंह अनग के बाग निषंग विलोचन ।।२।।

अथ श्री कलिंद नंदिनी स्तुति ।। कवित्त ।।

जाके तीर वासी मन आन त न कासी
चित छावति उदासी विधिहू की राजधानी मैं ।।

रवि की कुमारी ऐसी मोहन की प्यारी
सब सरिता तें भारी जस जाकी मुनि बानी मैं ।।

जाकी धार होति तरवारि कर्म बधन कौं
लागत न वार भव पार जात जानी मैं ।।

छुवैं नेकु नीर पावै पुन्य को सरीर
पार रहै एकी मासान बतासा जैसें पानी मैं ।।३।।

अथ श्री वृ दावन वर्नन ।। सवैया ।।

कूजत कोकिल के गन कु ज मैं मत्त मधुव्रत गु ज सुहायौ ।।
चारु लता लपटी तरु सों सु किधौ तरुनी पिय कठ लगायौ ।।
धार लर्प जमुना जल की चहुँ ग्रोर विचार इहै चित ग्रायौ ।।
नीलम को रचि हार मनौ करतार लै श्री वन कों पहिरायौ ।।४।।

अथ सात रस ।। सवैया ।।

गेह सौ नेह तज्यौ तौ कहा ग्ररु सीस ग्रवास की ग्रोर उचायौ ।।
जात कियौ सुरलोक के लागि कहा भयौ वासव कौ पद पायौ ।।
भार सरीर कौ धारि फिरयौ सु वृथा जग जीवन कौ जु गवायौ ।।
ज्यौ मन मैं न कलिद सुता तट पेलत नद को नदन ग्रायौ ।।५।।

सवैया ।।

तप केतौ करौ धरनी मैं फिरौ धन कौंन धरी जुग कोटि जियौ ।
सव देवन कौ हरि सेवन कै मन मानतो जौं वर मागि लियौ ।।
गुरु ज्ञान गहे धरि ध्यान रहे सु कहा भयौ जोग ग्रनेक कियौ ।
हुलसै सुनि ज्यौ नहिं कान्ह बपान तौ ताकौ पपान समान हियौ ।।६।।

ग्रथ श्री कृष्ण की सुन्दरताई वर्नन ।। सवैया ।।

छीर पयोनिधि मैं प्रगत्यौ ससि सुन्दर श्री कौ सहोदर भाई ।।
मद कियौ ग्ररविंद कौ रूप सौ चद लही सुषमा की बडाई ।।
भाप्यौ विरचि सौ चाहि कै रच मै मोहन के मुप की छवि पाई ।।
ग्रानन पै विधि थाप दई सोई छाप भई न छूटै सबराई ।।७।।

अथ जन्मौत्सव ।। सवैया ।।

नदन होत जसोमति को सुर नदन को कुसमैं वरिसावत ।।
चदन वदन सौंर मैं गोप सु मापन नापि दही मुप लावत ।।
देत हैं गाय लुटाय भडार कौ कचन रच न हू नर पावत ।।
जो सुप नद के मदिर ग्राज न सौ सुपने हूँ पुरदर पावत ।।८।।

नद के मदिर आवत कान्ह के मेरु तै सोभसिरै दरसै है ।।
देपन चाह उछाह भरी हरि वासव की वनिता तरसै हैं ।।
पेलत हैं पय की पिचिकारनि गोप मैं आनद ओप रसै है ।।
मानौं अगार अहीरनि के घन धार पियूषनि की बरसै हैं ।।९।।

भौ सुत रानी जसौमति कौं सुनि गोप नचै व्रज मोद मचाए ।।
गोकुल के सुर देपि उछाह सु चाह भरे सब ही अकुलाए ।।
अज्ञ ह्वै जज्ञ किए किहिं काम न स्याम भजे मन मैं पछताए ।।
पुन्य तै वद परे सुरलोक मैं नद के ओक मै वास न पाए ।।१०।।

रावर गोकुल के पति दोऊ रमै हरि भादव कौ जु महीनौ ।।
केसरि के किये मोछ के केस सु केसरि कौ रग लाय प्रवीनौं ।।
कारे है नैंन के तारे तेई अलि बाढ्यो है मोद कौ सिंधु नवीनौ ।।
आनद मैं वृषभानुजी नद कौ आनन कौ अरविंद ही कीनौं ।।११।।

भादव मैं दधि कांदव की हरि सोभ मची न सकै कहि वाँनी ।।
थाल भरे मुकतानि सौ गावत आवति हैं वृषभानु की रानी ।।
आनँद की सरिता उमडी सुप देपि रही नभ माहि भवाँनी ।।
नद की चेरी रची न विरचि तची यह पेद सची पछितांनी ।।१२।।

हमारो कियो श्री भागवत प्रकास तहां को कवित्व

प्रगट भए हैं कान्ह सवन सुने है कान,
मान नीकी सुधा तै सरस यह वात है ।।
गोपगन नाचै कई गावै सुर साचै,
मन हितुन के राचै लपै मोद उफनात हैं ।।
दूधन नहावै कई मापन लगावै मुप,
सुप उपजावै सौ तौ कासौं कह्यो जात हैं ।।
वाजत निसान देत दान ऐसे गोकुल के,
देप कै अहीर सुनासीर ललचात हैं ।।१३।।

अथ पूतना कौ प्रसग । दोहा ।

सिला पीठि पटक्त कही उछरि जु देवी वात ।।
और ठौर उपज्यौ जु तुव मारनिहार विप्यात ।।१४।।

यह सुनि कस कह्यौ असुर थोरे दिन के पाय ।।
वालक मारहु नद गृह दीनी वकी पठाय ।।१५।।

आदि पूतना आय हैं ब्यौमासुर लौं दुष्ट ।।
मोहन ताकौं मारिकें करिहैं देवनि तुष्ट ।।१६।।

।। सवैया ।।

रभा की रूप सौ रूप बनाय वकी कुच वु भनि पैं विप लायौ ।।
आई है नद के मदिर मैं अति सुन्दरि देपि कछू न कहायौ ।।
झूलत पालना मैं लपि लाल कौं लीनो उचायकैं अक लगायौ ।।
छीर पी आवति ही बलवीर कौं पूतना फेरि सरीर न पायौ ।।१७।।

नद आदि गोप सब मथुरा गये थे कर देने को फेर आए पूतना कौं वराई ।।

अथ सकटासुर वध ।

कान्ह पै चोट करो यह चाह छप्यौ सक्टासुर नाहि डरै है ।।
सोवत पालना मैं नद नदन आनन चद कौ मद करै हैं ।।
लात सौं गाडा हन्यौ हरि कस की फौज कौ लाडा न देपि परै है ।।
यौ सुर सालनै काल कियौ वकरा दवि ज्यौं छकरा सौं मरै है ।।१८।।

अथ तृनावर्त वध ।।

लोपत भानु प्रताप चल्यौ ब्रज कस कौ दास महावल वक है ।।
धूर समीर कौ धारि सरीर गह्यौ हरि कौं मन आनी न सक है ।।
प्रान हरयौ नद लाल गला गहि रछ कौ बछ र ची पर जक है ।।
पेलत है पल के उर पैं मयनाक के अक पैं मानौ मयक हैं ।।१९।।

अथ जसोदा जी कौं संपूर्ण विस्व मुष में दिषायौ ।।

गोद लिएं सुत कौं जसुदा हरि हेरति है मुष वेद वषान्यौं ।।
आनन वीच चराचर की रचना चष सौ लषि नेह न भान्यौ ।।
प्रेम प्रभावतें ईसर भाव गयौ दवि नेंकु नहीं चित आन्यौ ।।
नींद के झोंक में देष्यौ त्रिलोक हिए अपनौ सपनौं करि मान्यौ ।।२०।।

अथ भादवसुदि अष्टमी प्रात समय श्री राधिकाजी कौ जन्म कौ उत्सव ।।

सवैया ।।

आनद वाजे वधावके वाजत,
रावर मैं उमगे नर नारी ।।
भादव मैं दूधकादव धूम मची,
वहुरौं हित कौं सुषकारी ।।
सोभ वनी अवनीकी वनी हरि,
होयगी मौज मनोज विचारी ।।
लाडिली कीरति कौं प्रगटी,
व्रज मोहन को मन मोहन वारी ।।२१।।

कौटिक गाय लुटाय दई पट,
हाटक दे जु कियौ सनमान है ।।
वाहिर डारि जवाहिर कौ दियौ जन्म,
सुता कौ सुन्यौ जव कान है ।।
चाह सौं अैसौ उछाह कियौ सुकरें,
तिहूँ लोक के लोक वषान है ।।
गोकुल चंद भये दिये नदजी तासौं,
दुचद दियौ वृषभान है ।।२२।।

थाल भरें मुकतानि की माल सौं,
गावति आवति हैं जु बधाई ॥
नाचत चारु नटी नट के ठट,
चंग मृदंगनि की धुनि छाई ॥
भानु सुता प्रगटी सुनि कें,
सुर फूलिकें फूलनि की झर लाई ॥
डारति हीरनि कौं सब वारि,
अहीरनि की वृजमाहि लुगाई ॥२३॥

कीरति कौं तनया उपजी जिय में,
उमगे सुनि कानरसी है ॥
रावर के सुप देपन कौ,
सुर राजहु की वनिता तरसी है ॥
वारन की मुकतानि की रासि,
परी सब वारन में दरसी है ॥
टोलन टोलन में व्रज के मनौ,
औलन की वरषा वरषी है ॥२४॥

अथ भादव सुदि जसोदाजी एकादसी जल पूजन कीयौं ॥

सवैया ॥

पूजि कें पानी जसोमति रानी पठावति है घर गोप के बाम्हन ॥
थाल में लाल लें लाल पें वारति माल अनेक लुटावति चायन ॥
आनद भौपुर मदिर में सुर अन्दर सुन्दरि गावति गायन ॥
पारति है कुल देव के पाय परें कुल देव गोपाल के पायन ॥२५॥

अथ नाम करन

दोहा ॥

रोहिनेय को नाम सुनि, गर्ग कह्यौ वलदेव ॥
मुसली सकर्षन कह्यौ जानत हैं सब भेव ॥२६॥

कृष्ण कह्यौ मोहन कह्यौ, फेरि कह्यौ घनस्याम ॥
भएक वें वसुदेव सुत, वासुदेव यह नाम ॥२७॥

अथ बाल लीला ।।

सवैया ।।

दमकी दुति दतनि कीन तऊ मन आनन ईदु निहार छकै ।।
घर की गनती न तियानि रही मति नद के मदिर मैं बिथकै ।।
कर राषि कैं ठोडी पे बाल कोईक हसाय हसै उतला पटकै ।।
हरि हेरत कैउफनाय रह्यौ मुदमाय हिए न समाय सकै ।।२८।।

मातु लपै द्वय दातनि की रुचि सावरी सूरति मोद बढावति ।।
भाई भुजा कटिछीन लसै हरि ककन किंकिनी की छवि छावति ।।
कान्हके पावनिकी सुषमा नपपाति लपै मनमैं यह आवति ।।
बधु सौं सधि कियौ मनु चाहति चद कला अरविंद मनावति ।।२९।।

प्रानन के प्यारे व्रज लोचन के तारे होत,
मन तें न न्यारे रूप देपें सबही जियें ।।
नैंन अनियारे मैंन बैंन जापैं वारे,
कहा पकज बिचारे सम भासत नहीं हियें ।।
ऐसौ कान्ह साधु सौं बपान चरनामृत कौ,
सुन्यौ देप्यौ होति राजी बूंद एक के लिए ।।
सतन की बानी ताकौ पारषि कौ ठानी कहै,
साचौ कैंधौ झूठौ यौ अगूठौ पाय कौ पिए ।।३०।।

अथ दिठौना वर्नन ।।

बुंद कलीनि को मद करै हरि दतनि की छवि अग मनोहर ।।
भौहें हरें रुचि काम कमान की जीतत नैंन मनौ भव के सर ।।
आनद इदु पैं काजल बिंदु बिराजत अंसै मनौ सुषमा घर ।।
कैंधौ छपाव को सावकरी मकरद पिवैं अरविंद के ऊपर ।।३१।।

नद कुमार कौ साजि सिंगार सुमोद भरी हसि गोद मैं लीनौ ।।
हेरि रही मुष की छवि माय लपै जिंहि लागत चद मलीनौं ।।
आनन काजल बिंदु बिलोकि कहै अलितूं वलिनी नीकौ कीनौ ।।
दीनौ डिठौना न डीठि लगै पर कै पर डीठि कौ आसन दीनौं ।।३२।।

सजनी गन मैं जननी जसुदा लपि,
मोहन को मन मोद भरै ।।
करताल दै ग्वालि बलावति लाल को,
ख्याल करै तिहि ओर ढरै ।।
अवलोकि कै आन के आनन को,
फिर आय जसोमति ही सौ अरै ।।
उठ नाहि सकै कट नाहि चलै हसि,
लेति है माय लगाय गरै ।।३३।।

आनन चद ते चौगुनो चारु मनोहर मूरति कान्ह सुहाए ।।
आयकै ग्वालनि की ललना चहैं बोलन मोहन कौं जु सिपाए ।।
भाई कहौ फिरि माई कहौ हरि नद जसौमति हू कहवाए ।।
मामा कहौ कई वामा कहै यह नाम सु स्याम घनौ मुसक्याए ।।३४।।

मजुल पाँवन मैं घुघुरु रव जीतत रग सौं अग तमालहि ।।
नीकी लगै धुनि किंकिनी की डिगतै डग देत रिझावत बालहि ।।
आगुरी लाय के माय चलावति आगनि मैं हरि नैन विसालहि ।।
आय इहा किन देपि भटू मन होत लटू लपि लाल की चालहि ।।३५।।

कीरति रानी सुता लिए गोद सु मोद भरी जसुदा गृह आई ।।
लाल लड़ैती सौ ख्याल रच्यौ ललितादिक बीच मैं रापि मिठाई ।।
दौरे दुहु ठुदु औरसौ लेन को आई लई ब्रपभान की जाई ।।
आनन चद की ओर चकोर से हेरि रहे टक लाय कन्हाई ।।३६।।

कौतिक राधिका मोहन को कोई,
ओहन को ल्याई गोपकुमारी ।।
सावरो गोरी के सग रमैं हरि,
भोरी पीयूप सी वात उचारी ।।
हाथ लटू बृजनाथ लिए छवि,
देपि छकै सब देपनिहारी ।।
पेलत नद के आगन में,
नद नदन औ बृजभानु दुलारी ।।३७।।

इदु सो ग्रानन लोचन वान से,
राजत भौंहैं कमान कसीसी ।।
कोमल ग्र गनि के लपि रग,
ग्रनगहु की समता फीकी सी ।।
ग्वालनि की ललना विच लाल,
नचै वृज वाल रहैं है छकीसी ।।
पाय परैं डिगु लाय मही उमही,
सवही हिय मोद नदी सी ।।३८।।

पावन पावनि मैं घुघरू भनकैं रसना कटि माहि सुहाई ।।
सावरे गात पयौज के पात से लोचन वात सुधारस छाई ।।
केहरी कौ नप कठ लसैं लपि लाजति चदकला की निकाई ।।
पलत वालक मैं ग्रति सुन्दर नद के मदिर माहि कन्हाई ।।३९।।

वाह गहै वलदेव की मोहन पेलत ग्रागन मैं न रहैं थिर ।।
रोकि रई कर सौ करपै हरपै मन माय लगाय हिये फिर ।।
मापन मागत चापन कौ ग्रभिलाप भरी जननी सौ हठै चिर ।।
वाल को प्याल निहार सवै कहै सौहै दो चद री नदकौ मदिर ।।४०।।

गीद मैं वैठे गोपाल लसैं मनौ ग्रानन चद मै कोटि कला है ।।
लाल गलैं मुक्तानिनि की माल मनोभव तें तन रूप भला है ।।
देपि हसैं छवि माय पुछै हरि पायी परी तु कहू कमला है ।।
जो मुप मोहि नही सुपनैं तुहिं मेरौ सोभागन तेरौ लला है ।।४१।।

कचन को वछग सुरभी वनवाय कैं नंद दियौ सु पिलावैं ।।
ग्वाल पनौ सिपैं वालपना तें निहाल करैं जिंहि ग्रोर चितावैं ।।
घास लगाय कैं पास पडै रहै हास कैं कोई सपा सुनौं ग्रावैं ।।
सोहनी सूरति मोहनी मूरति दोहनी लैं कर गाय दुहावैं ।।४२।।

चारु रची चोटि ग्रानद रानी सिंगारि कैं फेरि पवायो है पानन ।।
घूघुरवाली छुटी ग्रलकें मुप कजु पें मजुल छूय कैं कानन ।।
ग्रारसी मैं हरि देपि छकें छवि जीतत लोचन काम के वानन ।।
माय कही हमसौं किन साच सू चंद सौ काज मैं कौंन को ग्रानन ।४३।

जामाल से पीत तापै हीरा को हमेल हार,
ऐसी छवि निरखै नयन बडभाग के ।।
लाल गलै सोहै लाल तिलक विसाल भाल,
अग अग रूप के पयोधि बिन थाग के ।।
गोद मैं लिए हैं अति मोद भरी नद रानी,
हसि हसि वचन उचारै अनुराग के ।।
आनन पै अलकै झुलत बंधी लोटत हैं,
कज के बिछौना पर छौना काले नाग के ।।४४।।

आप पाय माखन पियाए ग्वाल बालनि को,
लालन लुटाई है मलाई बन चारी सौं ।।
पी गए है छीर कंई छोहरे अहीरनि के,
आवति निहारि डरे कान्ह महतारी सौ ।।
कारो सुत देके गोरी सुता वृषभानुजी सौं,
लै हो कह्यो जसुदा रिसाय बनवारी सौ ।।
परो तेरे पाय अब तज्यौं औट पाय मति,
मोहि पलटाय माय कीरति कुमारी सौं ।।४५।।

उराहनौ ।

जब जसोदा जी को पुत्र नही थो तब कोई पुत्रवती पुत्र को उराहनौ देती तब जसोदा जी कौं सुनि कै आंखिनि मैं आसू आवतौ। हमारै भी पुत्र होतौ तौ हमकौ भी कोई उराहनो देतौ सो बात इत्यादि करि वृज देवी सब जसोदाजी कौं उराहने को सुख दिखावै हैं ।। कृष्ण दूध दही खायो है तासौ नही ।। कृष्ण तौ वृज वासिनि कौं प्रानहुतें प्रिय हैं ।।

दोहा

दूध दही माखन धरै राखै दही जमाय ।।
कहै भाग मेरो बडौ ज्यौं जेवै हरि आय ।।४६।।

कवित्त ॥

काहू कौ उराहनौ तनै को सुनि नदरानी,
भर लेती नैन कहै गोप की किसोरी है ॥
दूध दही नापि नवनीत अभिलषि चापि,
मही फिरै वही कान्ह मथनी कौं फोरी है ॥
जसुदा रिसाय नदलाल कौ रही चिताय,
कह्यौ हरि याहि परी झूठि ही की ठोरी हैं ॥
माय सौं छपाय आप मापन कौं पाय,
आय देषौ वरा जौरी ग्वालि लावै मोहि चोरी है ॥४७॥

बतोसा ॥

मोहन मदन को वदन चारु चद हूतैं घर लषि,
सू नौ कर मापन मापन लियौ उचाय ॥
घात लाय गोपी पात गह्यौ नद नदन कौ,
याही समैं पाय जसुमति तहा गई आय ॥
चोर कहि गही वाह जोर कछु चलै नाहि मेरौ,
सुत औरै मनि थभ मै दियौ वताय ॥
हेरि निज छाही रहे चकित की नाही,
कहै दूजो महरेटो एतौ वेटो मैं तिहारो माय ॥४८॥

रोकि तू मोहन कौ जसोदा थर,
दूध दही पर की गटिकी हैं ॥
फौरि घरी छिछिआ घर मैं,
हरि छाछि ढोराय दयौ घटकी हैं ॥
गोरस छीका धरचौ न वचै कछू,
जानत कान्ह वला नट की हैं ॥
कोन सकैं हटकी भटकी इन,
मापन की मटकी पटकी है ॥४९॥

पायौ दही चट कायौ है मापन आय गई जसुदा तब ही सषि ।।
गेह सौ ग्वानि बलाय ले आई कहो किम दूध दही कौ सकौ रषि ।।
चोरी कौ तोहिपरचो चसकौ कहिमायलला पर गोरस कौं चषि ।।
मोहनकी तकसीरभुली थकि सी रही जोहनि को तिरछी लषि ।।५०।।

छोटी छुटी जुलफें कपोलनि पें लोल लसें
हसें तब दातनि की दमक रहत छाय ।।
आनन पयोज लषि लाजत मनोज कहें
चौज भरी बातें हर मन को गहै रिझाय ।।
ऐसें कहै कान्ह गोप वधू जो कहति आनि,
सुनें दें कें कानन बिनान को सकें उठाय ।।
मापन की चोरी नावें व्रज की किसोरी
मैं तौ हाऊ के डरनि माय बाहिर सकों न जाय ।।५१।।

सवैया ।।

जाय जसामति कौं कहनौं हरि लाडिलौ अैसौ कियौ तैं कन्हाई ।।
चोर स आय घुमे घर मैं नहिं छोर बच्यौ न बची है मनाई ।।
जागि उठी पैंन उठि गयौ रची बालपना में इती चतुराई ।।
नीद में मोहन मो चोटि आपटि आवी भट्ू पढ़िआ अटकाई ।।५२।।

धाम बिलोकि कें सूनौ धसे घनस्याम उतार लई दधि की थरि ।।
घेर लियौ घर ही मैं तबैं सब गोपनि की बनितानि मतो करि ।।
जोर चलैं नहि नद किसोर को डारी मही तब ही कर को भरि ।।
आषि में छाछि की बू द परी सब मू द रही दृग कूदि गए हरि ।।५३।।

सोई वधू मुष लाय कैं मापन पाट मैं डारि दीयौ करि पेरौ ।।
गोपन की बनितानि बुलावत आय यहा किन कौतुक हेरौ ।।
चौरि कैं गोरस चाषित अपसु माय सौ देति उराहनौ मेरो ।।
रोस बनाय कैं जोस सौं बोलत देषत होस गयौ सब केरौ ।।५४।।

देषत माहि न भावत मापन अैसें कहै सब आगें कन्हाई ।।
डीठि बचाय घुसें घर मैं न बचें घृत दूध दही की मलाई ।।
प्रीति पगी घर आय उराहनो देत जसोमनि को जु लुगाई ।।
चौरि कैं पात सुहात घनौ भयौ छौकरौ तेरौ चटौकरौ माई ।।५५।।

अथ मृतिका भछन ।।
फेरि श्री जसोदाजी कौं मुष मैं सम्पूर्ण विश्व दिषायौ ।

सवैया ।।

सावरे अग अनग तैं सुन्दर सग सपान के कान्ह विहारत ।।
जीभि पै लारा लइ वृज की रज आनद सौ रस कौ निरधारत ।।
ग्वाल के वाल कही जसुदा रिस सौ कहै आनन क्यौ न उघारत ।।
षोलत ही मुष लोक लपै ज्यौ मजूस मैं चित्र जलूस निहारत ।।५६।।

अथ दामोदर लीला ।

कुबेर के पुत्र नलकूबर मन ग्रीव नारदजी के स्राप सौं जमलार्जुन भए थे नद जी के द्वार पै इन्द्र की पूजा की मिठाई कृष्ण जूठि आई तब जसोदा जी उषल लगाय दांम सौ बाध्यौ सो उषल लगाय कै दोऊ वृछ को तोरचौ तव जमलार्जुन फेरि कै आपने लोक गए ।

गात गुलाव के फूल से कोमल इदु सी आनन की जु निकाई ।।
सुन्दर ऐसो गोविंद पै रोस कियौ कहा पाय लई ज्यौ मिठाई ।।
दाम तैं स्याम कौ वाध्यौ निकाम भए तरू टूटत राम सहाई ।।
प्रान कौ प्रान सो जानत तू हरि यौं मति कैसे जसोमति आई ।।५७।।

अथ श्री भागवत प्रकास कौ सवैया ।

जौ लौं न आपु लहै कछु पेद काहा वह वेदन आन कौ जानैं ।।
आजु लौं वेई हुते तरु जछ उधारेन क्यौं हरि काहे भुलानैं ।।
मातु दियौ जव बधन कान्ह कौ म्यन के दुप कौ तव भान ।।
देपौ इहै अपनेई सरीर पै भीर परैं पर पीर पिछानैं ।।५८।।

अथ वृज देवी सव श्री कृष्ण कौ नचावैं ।।

गोपन की रमनी रमनीय निहारति है हरि के मुष कौ सव ।।
लाल नचो वृज वाल कहैं यह ष्याल षगी रग सौं पागिकै जव ।।
मान पै पाय परै अगनी मैं रचावत चित्र बतावत भावव ।।
नैन नचैं कछु ग्रीव मुरैं ललनैं तिय कौ मन कान्ह नचै तव ।।५९।।

अथ श्री वृन्दावन गमन

दोहा ।।

अमुर असु उपजे किते श्रीगोकुल मे आय ।।
नद लाल त्यारी रची दीने तिन्हहिं पवाय ।।६०।।

गोकुल मैं उपद्रव देषि श्री वृन्दावन कौं गोप चले
अथ श्री बृन्दावन वर्नन ।।

सवैया ।।

वास वसत को मजुल कु ज मे गु जत भौर हरें सबको मन ।।
सूर सुता तट धीर समीर रही सुपमा गहि मानो लता तन ।।
हेरत मोहन की अटवी घट बीस विसें है कुवेर हू को धन ।।
इद को नदन मद लगें निरषे चष सों नद नदन को वन ।।६१।।

गोकुल के तह गोप वसे हुलसे अति गाय की पाय चरी है ।।
सोभ कलिंद की नदिनी की अरविंदनि को मन लेत हरी है ।।
फूल के नद कुमार सिंगार रचे कर फूल की लीनी छरी है ।।
श्री मनु मजुल कजनि को तजि गज ह्वै कु जनि माहि परी है।।६२।।

पाव लसै थल की नलिनी हरि रभन ही छवि जघ लसी है ।।
फूलनि के गहने सब गात मै पात मैं सारी की सोभ वसी हैं ।।
ष जन नाहि स अजन लोचन चारु चलाय कै नेह फसी है ।।
नद कुमार निहार मनो दर कौन अनार वनी विहसी है ।।६३।।

सीतल मद सुगध समीर हरै चित भौंर की भीर घनी है ।।
ऊडत हैं न पराग रमै तरु नाह सौं फाग लता रमनी है ।।
पीत औ स्याम कहुँ कुसुमावलि रेष सी देषि परै वरनी है ।।
कूल कलिंद के फूल नही यह रेसमी औढें दुकूल वनी है ।।६४।।

अथ वत्सासुर वध

दोहा ।।

वछ रूप धरि अमुर इक, आयौ वछरनि सग ।
पटक्यौ ताहि कपरथ पै मोहन सोहन अ ग ।।६५।।

जेवत गोपन मैं मन मोहन कुंज में गुंज की माल गरैं हैं ।।
पीत पटी लपटी कटि छीन सो अंग अनंग के मान हरैं है ।।
चापन लाल करैं मुष मापन वापन यौं सुषमा उचरैं हैं ।।
छाडि विरोध कौं सीत मयूष मैं पंकज मानौं पीयूष भरैं है ।।७१।।

मन मोहन जेंवत चाप सपान चपावत हैं तरकारिन कौं ।।
कपि पोत कपोतन कौं कछु देत लपैं कछु भील की नारिन कौं ।।
तरसैं सुर सीत प्रसाद के स्वाद कौं पात लपैं वनचारिन कौं ।।
हरि जूठनि की कनिकान मिलैं कवहीं कनकाचल चारिन कौं ।।७२।।

साझ समैं वछरानि लिए व्रज आवत मोहन गेंद उछारत ।।
आलि लसैं कटि काछनी की छवि फूल की मात मनोहर धारत ।।
गोरज आनन पैं लपटी अपनी पट लैं कर नंद उतारत ।।
कैंधौं मयंक को मेटैं कलंक कैं कंज को पोछि पराग उतारत ।।७३।।

अथ अघासुर वध ।। श्री कृष्ण जी वछरा चरायबे जाय थे वीच मैं अघासुर मुष फारि वैठचौ

गोधन को मग रोकि लियौ अघ आनन जाय कैं रोस छयौ है ।।
पेट मैं पैठि गये सव ग्वाल समेत गुपालनि सोच भयौ है ।।
भार अपार परचौ तन मैं न सभार सकै न सकै उचयौ है ।।
तेज हुतासन सो हरि को लहि अंग सुरंग सो फूटि गयौ है ।।७४।।

अथ वत्स हरन् ।।

दोहा ।।

विध पारष हरकी करत चौम्हहा मैं आय ।
ग्वाल वछ हरि कैं रचे माया माह सुवाय ।।७५।।

व्रज गोपिनि कौं गाय कौं यह मन आठौं याम ।
होहि पुत्र मेरे कवैं सुन्दर तन घनस्याम ।।७६।।

पूरत भक्त मनोरथहि वेते वछरा ग्वाल ।
आपुहि वेही रूप मौं भए तवैं नंद लाल ।।७७।।

वरष वित्यौ विधि आय कैं मन मैं अचरज मानि ।
ग्वाल सहित वछरा दिये प्रभु की अस्तुति ठानि ।।७८।।

अथ ब्रह्म स्तुति ।।

सवैयो ।।

ग्वाल समेत हरे बछरानि अहो हरि ईसुरता तुव तोलत ।।
तेते बनाय लिए सबही तुम वैसौही रूप औ तैस ही बोलत ।।
चारिहु आनन सो चतुरानन यों कहि के अपराध कौ छोलत ।।
कोई पलास नही तुव माया के पास बधे सबही सुर डोलत ।।७९।।

अगन मे तुव लोक अनेक गने नहिं काहू सों होत निवेरौ ।।
मोसे किते करतार तहाँ सब ही पै रहै तुव माया कौ घेरौ ।।
यो अपराध हमारी छमो निज सेवक जानि सुदृष्टि कैहेरौ ।।
मैं हर रावरी यो समता करी मो समता कौं करै ज्यौ चितेरौ ।।८०।।

अथ गो चारन लीला कार्तिक सुदि अष्टमीं कौं नदजी श्री कृष्ण को गाय चरायिवे कौं पठाए ।।

सवैयो ।।

मोहन गोप के गाहन मैं वन जायकैं गाय चराय विहारैं ।।
वसी बजाय रिझाय कैं ग्वालनि साझ पर ब्रज ओर पधारैं ।।
आनन चद कौ मद करैं पलनाँ हिलगैं जिहि ओर निहारैं ।।
काम ही के हरि रूप गरूर कौ मोर की पाप मरोरि कैं डारैं ।।८१।।

कवित्त ।।

सुबल सुबाहु मधु मगल सपा है साथ
गए कान्ह गाधन चरावन मरारे हैं ।।
ठाढे तर छाही दिए गाप गग्वाही
मन देपत बिकाही ब्रज बासिन के प्यारे हैं ।।
गोरी राग गावैं सग गायन के आवैं
तिय देपत कौं धावैं फूल मान गल डारे हैं ।।
भृकुटी कमान जुग लोचन है बान
तेतौ अनमैन मैन के निपगनै निरारे है ।।८२।।

सवैयो ।।

फूलनि की मपतूल की डोरिनि माल रची वन होन जो जोहैं ।।
गावत गोधन सग सपानि के चद हू तैं मुप चद भलो हैं ।।
कामरी सो जिम स्यान सैनिम पामरी मो सपि कामन सोहैं ।।
आवति है पहिरैं तनिया ब्रज की बनिया छबि देपत मोहैं ।

अथ धेनुक वध ।। श्रीदामा सषा वलदेवजी सौं कह्यौ श्रीकृष्ण जो सौं कह्यौ इहा निकटै ताल वन है ताल के फल पक्के हैं मोहि पियावौ ।। तहा सपरिवार एक धेनुक नामा असुर रहै है ।। वाको षर को रूप है सो जौं आवै तौ ताहि मारौ ।।

दोहा ।।

मोहन औ वलदेव सग गए तहा सव गोप ।
तोरन लागे ताल कौ दोरचौ असुर सकोप ।।८४।।

वल पै लात चलाय कै फेरि चलाई आय ।
पकरि कोप सौं पग लिए पटक्यौ ताहि घुमाय ।।८५।।

वल मोहन मारे तहा ताके जिते सहाय ।
राजी करि सव गोप कौ आये वेनु वजाय ।।८६।।

अथ कालिय लीला ।। सोभरि मुनि तपस्या करैं थे हृद के तीर ।। तहाँ गरुड आए एक मछी मारी तव मुनि स्राप दिवौ ।। ज्यौ गरुड इहाँ आवै तो मरै यह सुनि कै काली तहाँ रह्यौ गरूड के त्रास सौं ।। ताकौं निकारि कै कृष्ण रमनक द्वीप कौं पठायौ ।।

कवित्त ।।

छूवै कोई नीर नही जाय सकै तीर लागै
हृद की समीर सोउहोत दुषदाई है ।।

आयौ कोई काल वडवानल की ज्वाल किधौ वारिध
तैं आई किधौं वासुकि को भाई है ।।

घस्यौ तहा मोहन मझार धार कोहन सौं
पोहन मैं ल्यायौ गहि सपान सहाई है ।।

सीस दैकै पाय नाचै मुरली वजाय
जैसें थाली पर नट काली पनयै कन्हाई है ।।८७।।

श्री भागवत प्रकास के कबित्त ।।

कटि मै लपेटि पट घाट के बिटंप चढे,
कूदत करोर काम समता न लाल की ।।
जमुना को पानी राजधानी भई पन्नग की,
पछि हू बरत है तपत विष ज्वाल की ।।
प्याल ही सौ काली के कपाल पे नचत स्याम,
हाथ जोरि कीरति उचारी वाम व्याल की ।।
परचौ हैं गरद ब्रज चाह हूद यगि रच्यौ,
करद सी लागी उर दरद गोपाल की ।।८८।।

एतौ सोच काहे को करत नदरानी आज
पानी तैं तुरत आयौ देपि लै कन्हैया कौ ।।
काली कौ विडारि मान मारिवा कौ पायन सौ
निर्मल करैगो नीर पूछवल भैया कौं ।।
पूतना के कूच को पचायो काल कूट वैसो
विप सौं नत्रास हरि मानै तुव छैया कौ ।।
अव लौं न ऐसी तेरे कानन मैं परी वात
आय है लहर कहु जहर पवैया कौं ।।८९।।

अथ दावाग्नि पान ।। काली निकरे पीछें नदादिक गोप गोपी श्री कृष्ण सहित जमुना तीर ताहि रात्रि रहे यासमैं दावाग्नि चहूं ओर कौं लगी तब भक्त वत्सल वृज कौं आरत देपि कैं दावाग्नि वुभाई ।।

सवैयौ ।।

दाव हुतासन आय लग्यौ चहु ओर सो त्रासनि सौं भयौ सोर है ।।
आपि मिचाय अचाय गये हरि गोपी सराहत कान्हनो जोर है ।।
रभा सी एक कहै सजनी मनिमानि अचभारी कारज थोर है ।।
क्यौं नही आगि चुगे मन मोहन राधिका की मुप चद चकोर है ।।९०।।

अथ रितु बर्नन ।। रितु बर्ननं करि पीछें प्रलववध दावाग्नि पान कहैंगे ।। इहा कछु भागवत के क्रम सौं वीच है ।।

अथ वसत वर्नन ।।

कवित्त ।।

ठौर ठौर भौरन की भोर होत कुजनि मै,
आए है वसत साथ कोकिल रिसाए है ।।
चातक चकोर मोर कीरन की भीर मची,
तरुनि सी तरुन लतानि अग लाए है ।।
करैं तिय मानन कमानन सी भौहै,
तानिए ही काज मे न महाराज के पठाए है ।।
जोगी तन तायिबे कौं विरही सतापिवे कौं,
मेरे जान काम के तमाम वीर धाए है ।।६१।।

सवैयौ ।।

मीत सताई वनी वनिता पति पाय वसत हिए हुलसी है ।।
फूल के मानो दुकूल बनाय लता तरु सौ लपटाय लसी है ।।
नूतन नूत के मजर मैं गुन सी अलि पाति सुभाति वसी है ।।
लायकै वान तियानि के मान पै कोपि कै काम कमान कसी है ।।६२।।

ऐसौ वसत मैं श्री कृष्णचद्र क्रीडा करते भए ।।

अथ ग्रीपम बर्नन ।।

कवित्त ।।

विपम प्रताप जग ग्रीपम कौ फैल रह्यौ
नाह का न कोई रूपी नजर निहारि है ।।
तरुन कौं छहरी न छोडति दो पहरी मैं
नलनी विलौकी रही वारि अक धारि है ।।
सीन कैंधौ भीत ह्वै सजोगि निनरी मैं पैठ्यौ
वैठ्यौ कै दरी मै कौन सकत सभारी हैं ।।
हेतन सौं वधि हैं अचेनन निहारि धूप
चेतन कौं जाहि मीनकेतन न मारि है ।।६३।।

अथ वरषा रितु वर्नन ॥

गाज सोई बाजत है दुदुभी गगन माहि,
चातक चकोर गावै मगल उछाह सौं ॥
भूधर वनी मे अवनी मैं मत्त नाचै मोर,
कामिनी सी नाचै भभदामिनी सुचाह सौ ॥
परत फुहारे न गुलाव पास धारन सौ,
सीचत धरनि औ तरुनि हित राह सौ ॥
वरिवे कौं जाति मोती माला वग पाति लिए,
ह्वै है आजु रितु को विवाह वारि वाह सौ ॥६४॥

सवैयौ ॥

सोभत स्याम घटा घन की चहु कौद मे वीजु छटा छहराही ॥
चातक मोर के सोर हरै मन सीत समीर सह्यौ नहि जाही ॥
पावस मैं वनवास वनैन हियौं तपसी चित मैं पछिताही ॥
जायगो जोग जो पैचि रच्यौ सरमा सरमी गरमी रितु माही ॥६५॥

मोरन नचावै चित कामिनि के भावै दामिनि
कौं दमकावै एसो आयौ वारिवाह है ॥
वृदा की वनी की सोभा भली अवनी की छवि
गोप रमनी की लपि वाढत उछाह हैं ॥
सुरग हिंडोरै घन घोरै ससिमुपी भूलै ऊचै
नभ ओरै राजी होत रति नाह हैं ॥
वदन सोहात चारु वैनी फहराति मानौं
भाग्यौ जात चद पीछे लाग्यौ जात राह हैं ॥६६॥

सवैयौ ॥

श्रीयन मैं वन मोरनि सोर मचायौ घटा घन की नभ सौहैं ॥
भूलत हैं रति सी वृजवाल जिनै लपि काम हू को मन माहैं ॥
भूला की भोंर सो आनि परयौ कुच पै कच ताहि सपी इमजोहैं ॥
मारयौ है मैंन मनोहर के गर पास इहै पवनामन को हैं ॥६७॥

अथ सरद रितु वर्ननं ।।

सवैयौ ।।

राजै सुधाकर की किरनै निसि दूर लौ सूर सुता जल धार मैं ।।
लै अलिगध कमोदन के पिवै मालती के मकरद कुआर मैं ।।
सेत कौ रेत निकेत लपै पुलिनै विच आवत ऐसौ विचारि मैं ।।
चूर ह्वै चद को सार परचौ महि सावरौ देपि परै है मभार मे ।।६८।।

श्री भागवत प्रकास कौ कवित्त ।।

सेत नभ नीरद निकु जनि मधुप पु ज गु जै ।
वनराज नागराज छवि छाई है ।।
जमुना सलिल सुछ लता तरु गहै गुछ ।
वृछन पै पछिन की वानी सुपदाई है ।।
सु दर समीर काम कर मे धनुप तीर ।
एक लीन वचै वीर मदन दोहाई है ।।
जामनी मे जुग मति छोडै भूलिहूते वाल रहिए ।
नरद सी सरद रितु आई है ।।६६।।

अथ सीत रितु वर्नन ।।

कूकत है चकवा चकई कहै कैसी भई विधि रात वढाई ।।
भानु के प्रान समान हुती अति नीकी वनी नलिनीकी सुकाई ।।
रपन के सव पान वरे तरुनीगन मान सकै न वनाई ।।
कोकहि की चरचा सव ओक मे आय कै सीत अनीत चलाई ।।१००।।

कवित्त ।।

वारे तरु पान किए छोटे दिनमान गहि ।
ग्रीपम को आनि तिय छाती मे छपायौ है ।।
राति करो भारी रवि जोति मद पारी ।
मोर पापन उतारी ओस जोसहि वढायौ है ।।
रानी है हिमानी लोपि दीनी वेद वानी ।
रापी कोक की कहानी सव जीवनिधु जायौ है ।।
छाडौ अछ माला मृग छाला नव वाला ।
गहौ एरे जतवाला मतवाला पूस आयौ है ।।१०१।।

आवत सीत के भीत भये विरही पिय पै तिय भौहनि तानी ॥
कूकत है गन कोकनि के गरमी तरुनी तन माहि समानी ॥
नाह के तेज को हीन विलेकि कै वूडि भरी नलनी रिस ठानी ॥
घौस सो जामिनी रोस करयौ सुपरै मिस श्रोस के नैन सो पानी ॥१०२॥

अथ ससिर रितु वर्नन ॥

जोगी वियोगी उरै ससिरै लषि नाह भयौ रहै नारि नजीकी ॥
नाचत गावत चग वजाय कै गारी लगै अति प्यारी नरी की ॥
रीत अलोकिक लोक मे रापि सबै रितु डारि दई इन फीकी ॥
राजै जहा वय सधि सी सु दरि सधि इहै सरदी गरमी की ॥१०३॥

अथ बसत पचमो ॥
सवैयौ ॥

आई बसत बदावन को मन भावन को सब गोप वधूटी ॥
लाल विलोकि कै वाल छकी छवि सौ चित लीनो है कान्ह चुहूटी ॥
भाल पै वेंदी गुलाल की देत लसै अलकै पलकै छुइ छूटी ॥
यौ सुपमा लषि कै कहि आवत चद चिपी मनो वीर वधूटी ॥१०४॥

अथ होरी ॥

होरी मची वृपभानु सुता हरि पै जु गुलाल की मू ठि चलाई ॥
नाह के चित अदायें चुभी औ खुभी उलटे भुज की जु गुराई ॥
चाहत केसरि डारन को सु सपी कहै लाल लपी चतुराई ॥
देपहु अग के रग निहारि कै सोनायें लावौ न गोना कन्हाई ॥१०५॥

हमारो कियो रस विचार सभा प्रकास तामै को कवित्त ॥

आवति सहेली लैलजीली होरि पेलबे को
भूपन बसन नीको टीको लसे भालपै ॥
गहै पिचकारी करी कु दन सवारी मानौ
कचन की वेली चली मिलन तमालपै ॥
लोचन लचावै चित पी को ललचावै
भरी देपन री चावें गारि गावै सुरताल पै ॥
घूघट मे दुरै झूठी मूठि उठै
मुरै तिय कै सोरग डारै रग डारत गोपाल पै ॥१०६॥

अथ प्रलंब वध ।। श्रीकृष्ण वलभद्र षेलें थे काधे चढाय कें सषा को कोई ठेकांना तांई पहुंचावनो प्रलंब सषा को रूप धरि बलदेवजी कों कांधें चढाय ले चल्यौ पीछें आपनो रुप धरचौ तब वलदेवजी मूंकी को मस्तक पें दीनी सिर फाटि गयो तब देवतनि स्तुति करी ।।

दोहा ।।

वाल ग्वाल में कध धरि वल कों चल्यौ पराय ।।
मारचौ तबें प्रलव कों परचौ मही में आय ।।१०७।।

फेरि दावानल पान मुंज के बन में श्रीकृष्ण सषानि सग गाय चरावें थे तहां दावाग्नि लगी ताको पान कियो ।।

मज वनी मे दाव लपि उठे गोप अकुलाय ।।
पान कान्ह ताकौकियो सवकी आपि मिचाय ।।१०८।।

अथ बेनु गीत ।।

घन तें सरस स्याम सोभें वपु अभिराम
मद मद राजें चद माहि हासी हैं ।।
पीत पट धारें बृदावन में विहारें
काम रूप मद हारें जुगलोचन ज्यों गासी हैं ।।
आनन सो लागी अधरामृत सौं पानी करें
सबै अनुरागी वेनु वाजें एक सासी है ।।
वास ही के चाप तें चलत वान हरें प्रान
वा सही की तान गृह काज लाज नासी है ।।१०९।।

अथ चीर हरन ।। अगहन में व्रजकुमारी कात्यायनी को व्रत करि श्री जमुनाजी मे स्नान करिवें कों गई तहां श्रीकृष्ण उनके प्रेम देषिबे कों चीर लै कें कदंब पर चढे इनकी हमसों बहुत प्रीति है कें लाज सों बहुत प्रीति हैं सो व्रजकुमारि कनि लाज को तिरस्कार करि जो जो श्रीकृष्ण कह्यौ सो उन किये तब वर दिए हम तुमसों रमन करें हिगे ।।

सवैया ।।

वारि मैं गोपनि की तनया विहरै सब तीर मैं चीरन कौं धरि ।।
लै कपरानि कदव चढे सु रहे हित सौ पगि कौतुक मैं हरि ।।
कैसो है हेत विलोकनि कौं निकसौ जल सौ नदलाल कह्यौ अरि ।।
लाज लिए सब देह तजैं इन नेह पैं लाज करी नव छावरि ।।११०।।

अथ द्विज पत्नी प्रसग ।। श्री कृष्ण गोपनि सहित गाय चरावैं थे भूष लगी मथुरा मैं ब्राह्मन जज्ञ करैं थे सषा पठाय तिनसो भोजन माग्यौ तिन सत्कार नहीं किए तव फेरि जाय तिनकी लुगायनि सौं कह्यौ तब द्विज पत्नी सब विविध भोजन ले कै सापनि सहित श्री कृष्ण कौं जिवाइ गईं तिनके पति न आप कौं अज्ञकरि माने स्त्रिन को बहुत सराहे तुम ध्यन्य हौ ।।

दोहा ।।

जज्ञ करत द्विज सौ मग्यौ भोजन सपा पठाय ।
नही दिए तिनिकी तिया गई सु कान्ह जिवाय ।।१११।।

अथ गोवर्धन धारन लीला ।।

दोहा ।।

पूजा हरि हरि इद्र की गोवर्धन की कीन ।
वरिस थाकि अभिषेक करि गोविंद नाम सुदीन ।।११२।।

सवैयौ ।।

पूजा पुरदर की हरि लोपि कैं पूज्यौ है भूधर मोद मचावैं ।।
यौ सुनि वासव मेघनि कौ पठयो व्रज वौरहु रोसनि छावैं ।।
देषि घनैं घन स्याम धरयौ नग जोर लटीं सुर सक उठावैं ।।
कील से कोल के दात कढे मति जात की भूमि वरावर पावैं ।।११३।।

वासव कोप कियो व्रज की वसुधा पैं प्रलै को पयोद पठायौ ।।
ऐंचि लियो छिति तैं नग छत्र सौं कान्ह ही सक्र को सत्र मिटायौ ।।
देषि सिहानी घनी नद रानी सु गोप सुता ताको गर्व गवायौ ।।
तो तन छीर को जोर नही यह जोर है चौरि कैं मापन पायौ ।।११४।।

हाथ पँ लै गिरिनाथ धरचौ तरु तोरत पौन घटा घन घोरें ।।
नीर की धार पपान को मार चलै चपला चहु कोद करोरें ।।
सोच करें सुर लोक के लोक धसैं ज्यौ धरा हरि पायके जोरें ।।
सूकर के मति दात दवं वहु कछप के मति आति को फोरें ।।११५।।

गाजें नही घन वाजे वजें नभ चातक के गन मगल गावें ।।
मोर करोर नचें नट से सुक वोलें न वेद विधान वतावें ।।
मोहन को कर वेदी लसें तहा दूलह भूधरराज सुहावें ।।
भानत वैर परहान सौ मनु वासव बीजुरी कौं परिनावें ।।११६।।

कोटि परी सत कोटि टुटि वहि आपनी पौन पराक्रम पोयौ ।।
लाज गही सुरराज घनी व्रजवासिनि को नहि अग भिगोयौ ।।
थाकि परी घन की पटली अगपैं नटली सवही नयौं जोयौ ।।
औढि कै चादर वादर की कर कज विछाय मनौं नग सोयौ ।।११७।।

अथ श्रीमागवत प्रकास के कवित्त गोवर्धन के प्रसग के ।।

वासव की पूजा लोपि कोप उपजायो कान्ह,
वाम कर महानग याही कौ उ चाये हौ ।।
दुर्लभ दरस जाको होतो तुमैं घनस्याम,
नारी देति वीरी सोई एसौ सच पाये हौ ।।
कई दावें गात हसि हेरि कै कहत वात,
दरस परस पाय विरह वहाए हौ ।।
जानति हौं व्रज की लजीली वाल देपिवे कौं,
हरि को अनादर कै वादर वलाए हौ ।।११८।।

कोपि दल वादल को गोकुल उमडि आयौ,
नकुन डरति कोई घटा गहरानी सौ ।।
धरचौ नग लाल ढिग ठाढी हैं लजीली वाल
मागें मुप वीरी कान्ह विना पहिचानी सौं ।।
जाकी छबि छलहू सौ क्हूँ न विलोकी स्याम
तेई हरि बोलति निसक दधिदानी सौ ।।
चाह्यौ पाकसासन वहायौ व्रजवासिनि कौं
विरह को नासनि भयो है मेघ पानी सौ ।।११९।।

डारत झकोर घनघोर परै वूद जोर
इतै कोप गोकुल पै वासव को आयिवौ ।।
वासर विभावरी को भेद न परै है जानि
चपला चलाय करै ओला वरसाइवो ।।
छिगुनी की छोर पै धरयौ हैं गिरि नदलाल
तीछन कटाछ नव वाल को चलाइवो ।।
स्वेद कप गात हेरौ हाथ डिगुलात कैसो
लाज मै परयौ है नगराज को उठाइवौ ।।१२०।।

घू घट ओट वनाय सषी लषि कान्ह हैं
आजु माहानग धारै ।।
धूम परो घन की नभ मै चपला जलधार
वयार की मारै ।।
गोकुल माहि 'विलोकति तोहि कवै सुधि
माहन नाहि सभारै ।।
नेकु रहै निचली किन वात वे गेरै
पहार कौ हेरै तिहारे ।।१२१।।

वासव को डरु नैक लगै न कहा भयौ गोकुल ज्यौ व्रज घेरे ।।
ओलनि मारि चलाय वयारि थकैगो उपाय वनाय घनेरे ।।
घू मत तोहि विलोकत मोहन एक सषी हिय ससय मेरे ।।
आजु अरी सवही व्रज वाचै मयाकरि नाचै न लोयन तेरे ।।१२२।।

अथ नदजी कौं वरुन के दूत ले गए ।।

दोहा ।।

अरुनोदय पहिलै गए जमुना नद नहान ।
वरुन दूत गहि ले गए पहुचे हरि तिहि थान ।।१२३।।

वदन करि नदहि दिए विए वरुन समान ।
देषि प्रभाव सु कृष्ण मे भयो व्रह्म को ज्ञान ।।१२४।।

अथ गोपनि कों मोछ रछान दिषायौ ॥

सवैयौ ॥

मोप को रछान विलोकनि को चहे ग्वाल निवेदनि के भरमाए ॥
मोहन के मुप की सुषमा तजि कान्ह तहा को तुरत पठाए ॥
कूप मैं भेक लौ ज्ञानी परे लषि नाक न वानन देह डराए ॥
बूडि मरें मति निर्गुन रूप मै दीन दयाल दया कै बचाए ॥१२५॥

पूरब थान दिषाए है कान्ह सु ग्वाल हठे ललचै मति मोरी ॥
तैंसो कियो तुरतें हरि फेरि ले आए है मुक्ति को बधन तोरी ॥
गोप कहै पछिताय कै ज्ञानिनि राषिए मोप पयोधि मैं वोरी ॥
रावरो हास बिलास सुधा चषि क्यो मैं चषी निरवान निवौरी ॥१२६॥

अथ रास लीला ॥

दोहा ॥

सरद निसा पूरन ससी सुनि मुरली की टेरि ।
गृह तजि आई गोपिका छकी कान्ह छवि हेरि ॥१२७॥

पति तजि उपपति सौ करें रति है तिय को पाप ।
कान्ह वचन यह वान सो लग्यौ बढ्यौ सताप ॥१२८॥

कबित्त ॥

पालन करैं सो पति और पति कैंसे
कहौ ताक्त ही ताके पानि गहैं जमराई है ॥
पाट पर डारैं रोग भोगंन बिडारें देषि
अग लागी फिरैं काल कुलटी बुढाई है ॥
एसे दोऊ जागनि सौ जोर कै वचावै नाहि
ताकौ पति कहै सोई बावरी लुगाई है ॥
विपति सो रापति हो भापत हौ कैसे
आज तुमैं विना और पति मानें पतिताई है ॥१२९॥

श्री बृजदेबिन कहे ताको जवाब श्री कृष्ण को नहीं आयो या लाज सौं छपे कैं प्रम पक्व करिवे कौं छपे ॥

दोहा

नेह पकै तपि विरह सो छपे कान्ह मन धारि ।
गोपी हरि लीला करति हेरति फिरति मुरारि ॥१३०॥
ललितादिक तरूलतनि सौ पूछत मोहन जात ।
देपे हौ तौ कहौ किन सुन्दर सावल गात ॥१३१॥

तुलसी जी सौं पूछें है ॥

सवैयौ ॥

ग्वालि सबै तुलसी सौ कहै मन मोहन मोहि मिलावौ दिषाय कै ॥
पावन पावन माँहि वसौ मन भावन के मति राष्यौ छपाय कै ॥
कामिनि जामिनि मैं विलपी लपिक्यौ चित राष्यौ करेर वनाय कै ॥
नैकु चितारत आरत के तुम आरति बेग बिडारति आय कै ॥१३२॥

व्याकुल ह्वै नदलाल विना व्रजवाल फिरै वन मैं विलपाही ॥
मोहन की मन भावती हौ तुलसी कहौ कान्ह गये किहि ठाही ॥
पूजत रापति हों तुमकौं तऊ लाल लषौं न कही नहि जाही ॥
सोन लषै हरि कौ जिनके घर मैं गरमे करमे तुम नाही ॥१३३॥

आगे जायकै पावन के चिन्ह देषे फेरि एक गोपी कौं सग ले गए थे वा गोपी नै आपनै बस जान्यौ तब वाहूकौं छोडि गए वा गोपी को विलाप करती इन सवन देषी फेरि कृष्ण को न पाए तव सव विलाप करिबे लगी तब श्री कृष्ण प्रगट भये ॥

दोहा ॥

हरषी हरि मुप को निरषि मिली उराहन देत ।
मानि आपनी चूक तब कान्ह नमे बस हेत ॥१३४॥

नोहरन ॥

सेत अति कोमल अमल चारू रेत लसै
होड करि भोडल न सकै यौ निकाई है ॥
मद मद सीतल सुगध गधवाहु वहै
सारे आसमान मैं विमानि छवि छाई है ॥
दोय दोय गोपी वीच इन्दु सो गोविंद सोहै
मोहै मन सवही कौ मडली वनाई है ॥
मडली के वीच नचै राधिका कन्हाई मानौं
काय करि काम साथ नाचत जुन्हाई है ॥१३५॥

चादनी छपाकर की छिति मैं सरस छाई
सोभत है स्याम नटुवर वेप को किए ।।
पावक सिपा सी दुति दीपै तिय अगन की
नैननि सौ नाह रूप आसव छकी पिए ।।
गान करि तान वाकी लेत आवै मान
पर मोहिनी क्यौं मोहै पिय अस भुज कौ दिए ।।
देहनि बनाय मानौ मैन के अपारा आय
गावत केदारा को केदारा रागिनी लिए ।।१३६।।

सवैयौ ।।

ललना गन नाचत लाल सगै वरिसै रस ग्रीव ढुरावनि मैं ।।
मन मोहन को मन लेति गहै तिरिछे चप चारू चितावनि मैं ।।
उघटै तत थेई ये थेई वढै सुपमा न थकी थहरावनि मैं ।।
सरसै दुति कु डल डोलन की रमझोलनि की धुनि पावनि मैं ।।१३७।।

दोहा ।।

ताल पैं पाव परैं व्रजवाल के लाल पै लागै कटाछन के सर ।।
नाचत लोल कपोलन पै अलकैं ढुलै आनन पै श्रम सीकर ।।
चौगुनौ रास मैं इंदु उजास बढ्यौ सुर देषि कहै नभ ऊपर ।।
ए नही चन्द मयूप भय मनौ पूपन माहि पियूषन के कर ।।१३८।।

मन मोहन गोप सुतान के मडन मध्य रसे हरि ग्वालनि मैं ।।
मिलि कीरति की तनया सो नचै दमकै दुति अग रसालनि मैं ।।
छकि जात है भीर की मोरनि सो विसरै सुर लोचन चालनि मैं ।।
व्रजवाल कहै वृषभानु लली ढिग चूकत लाल न तालनि मैं ।।१३९।।

श्रम सीकर सोहत आनन पै गति लेति कै गोप सुता मटकै ।।
चल कै कटि छीन पयोवर के भर राजत भूपन की चटकै ।।
पगु नू पुर की धुनि पूरि रही मिलि चूरी सौं चारु वजै कटकैं ।।
हरि हेरि रहे छबिलापट की मुप पै चटकीली लटै लटकैं ।।१४०।।

एते ताल माहि हरि नाचै बृज बाल साथ
ताकै कहु ना मरति लीला मकरद है ।।
दर्पन कदर्प लील हस लीला लील पुनि
ललित ललित प्रिय वर्धन मुकद है ।।
गौरी करयान चित्र कदुक श्री नद जय
विजय अनग श्री रग अभिनद है ।।
कनकाचल चन्द्रकला उत्तम सरस रछा
पूरन निसक लील सिंहनाद चद है ।।१४१।।

प्रति ताल मैं मोद मचावति हैं बृपभानु लली अरु कौर कन्हाई ।।
पुनि दीपक मैं कुल दीपक दोऊ नचै जय मगलदाई ।।
वन लाली वरै वनमाली मैं रग श्री कीरति मैं नचि कीरति जाई ।।
नद नदन नद मो ऊ सब सो दोऊ तालन मैं बृज बाल रिझाई ।।१४२।।

अथ श्री भागवत प्रकास कौ कवित्त ।।

पकज से चरन बरन बरन चारू केसरि तै
तरुनी के जूथ पिय आनद करैया है ।।
लोचन विसाल भुज मृदुल मृनाल से हैं
अग जगमगै जोति मन के हरैया हैं ।।
लेत गति ललित परत पाव तालनि पै
गावै कान्ह मिलि साचे सुर भरैया है ।।
मेरे जानि अवनी मैं आय निसानाथ
साथ तरनि तनैया तीर नाचति तरैया है ।।१४३।।

सरद जुन्हाई रास मडल रच्यौ कन्हाई
ससि तै अधिक सोभा तिय सुपमे लहै ।।
नाचै गोपी गन मैं मगन नदलाल हरि
बिथुरी अलक चारु चाहै चित को गहै ।।
लाडनी ललित गति लेत बहु भेद भरी
चलवनि देषि सुप छायो तिहु लोक है ।।
प्यारी उर अचल सरकि जाति चोली लगि
छकि जात मोहन अबोली बासुरी रहै ।।१४४।।

अथ जल केलि ॥

करि रास गए जल केलि को कान्ह सुप्रान पिया सग मैं सरसै ॥
विसनी की वनी मैं तियानि के आनन जानि परै हरि को पर सै ॥
सव सीचति हैं पिय को लपि कै नभ देवनि की दयिता तरसै ॥
कर की पिचकारिन की भरिसो मनौ वीजुरी वारिद पै वरिसैं ॥१४५॥

दोहा ॥

राति भई पट मास की रमे कान्ह जव रास ।
लीला करि सव कुज की गए देपि रवि भास ॥१४६॥

अथ सदर्सन जछ को प्रसग ॥

दोहा ॥

जछ सुदर्सन सर्प भौ साप अगिरा पाय ।
ग्रस्यौ नद कौस्वपद हरि भेज्यौ चरन छुवाय ॥१४६॥

अथ सप चूड कौ वध ॥ चैत्र की चाँदनी मै कान्ह रास करै थे तहां सख चूड आय एक गोपी हरी ॥

दोहा ॥

सप चूड के मूड तें लीनी मनिहि उतारि ।
हरी रास मैं गोपिका यातें डारचौ मारि ॥१४८॥

अथ जुगल गीत ॥

लोचन की गति को गहि चित्र कियो हरि माधुरी माहि वसेरो ॥
जौ लगि गाय चरावन जाय वितै छिन हू दिन ज्यो विधि केरो ॥
कातिक भान उगे असमान मै ह्वै किन पूरन चद को घेरो ॥
तौ भी सपी सुनि गोप सुतानि को कान्ह बिना व्रज होत अधेरो ॥१४९॥

प्रात समैं वन जात लला घर आवत होति जवै रजनी हैं ॥
मोहन की छवि जोहन का मु कहा कहिए अकुलानि घनी है ॥
कान्ह के आनन की सुपमा दिन मैं लपै सो घनि धन्य गनी है ॥
गोपन की तरुनी तें सुपी सपी भीलनि की घरनी हरनी है ॥१५०॥

सौ गुने सुदर पाय पयोज तैं अगन रूप अनूप अथागैं ।।
चद सो आनन पै अलकैं निरषैं सषि काम हू को मन रागैं ।।
भोरहि नद किसोर गए वन सग चहै चित प्रान लै भागैं ।।
जो बलवीर तपैं बिनपीर सो तीर तैं तीषी सरीर मैं लागैं ।।१५१।।

अथ अरिष्टासुर वध ।। कंस को पठायो वृषभ को रूप धरि अरिष्टा सुर ब्रज पर बडो उपद्रव करिबे लग्यौ तब श्रीकृष्ण ताहि असुर कौं मारचौ ।।

वृषभासुर को असु लियो लरि कै कान्ह कुमार ।
पसु पैं गालिव गोप है यह नहिं लष्यौ गवार ।।१५२।।

वार्ता ।।

जोगमाया ने कह्यौ कंस तेरौ सत्रु औरि ठौर उत्पन्य भयौ यह वात सुनि कस देवकी वसुदेव जी सौं अपराध छमा कराय छोड़ि दिए नारद जी जान्यौ जव भक्त पर भीर परै तव भगवान असुरन के संधार करै यह मन मे विचारि कंस सौं कह्यौ श्रीकृष्ण बसुदेवजी के पुत्र है इनही छपाय गोकुल राषि आए हैं ।। यह सुनि कै फेरि कंस देवकी वसुदेवजी कौं रोके ।। अक्रूर कौ ब्रिज पठायौ ।। ईहां धनुष जज्ञ है ।। बलदेवजी श्रीकृष्णजी कौं ले आवौ ताहींदिन अक्रूर मथुरा मैं रहैं ।। ताहींदिन केसी असुर कौं पठायौ ।। सौ ब्रज मे अस्वरूप धरि बडो उपद्रव करतो आयो ।। श्री कृष्ण ताकौं मुष मे वांहि डारि मारचौ ।।

अथ केसी वध ।।

दोहा ।।

केसी जलद तुरग कौं मारचौ हरि करि कोप ।
चढिबे कों राष्यो नही हय परिषैं क्या गोप ।।१५३।।

सवैयौ ।।

काल करौल हरौल भयो जिन कस के सासन को अभिलाष्यौ ।।
रागि सो सग मै लागि चले चित आनै नही कछू जीव को जाष्यौ ।।
चूर किए हैं चमूर से मधुनि दूरि कै भूमि के भारि कौं नाष्यौ ।।
कान्ह कुमार सिकारन मे जमना तट कौं रमना करि राष्यौ ।।१५४।।

अथ व्योमासुर वध ।।

श्री कृष्ण ग्वालनि को भेडा बनाय कै खेलै थे तहा व्योमासुर गवाल वेष बनिकै आयो ग्वालनि नै लेकै कदरा मैं डारि द्वार पै सिला दे आवै तब कृष्ण जानि गए ताकौं भूमि मैं पछारि मारचौ ।।

दोहा ।।

व्योम ग्वाल मैं ग्वाल हरि मुदै कदरा बीच ।
मोहन मय सुत कौ हन्यो जानि असुर है नीच ।।१५५।।

अथ अक्रूर आगम ।।

आयो भोज पति को पठायो गदिनी को नद
पूछै नद गोप दसा कस पाप मूर की ।।
कान्ह को बुलायो चाहै चाप उचवायो
बलदेव सा करायो चाहै कुस्ती मल्ल सूर की ।।
सुनिकै जवान ग्वाल ग्वलिनि के सूखे प्रान
गुरुता गई है सब ही के मुष नूर की ।।
असि की है घात कै प्रलय का है उतपात
असनि को पात कैधो बात अवहर की ।।१५६।।

दोहा ।।

प्रात होत सग कान्ह के गोपनि कीये पयान ।
सुफलक को नदन लग्यो जमुना माहि नहान ।।१५७ ।

गोप भए व्याकुल सबै देषि ब्रह्म कौ नूर ।
मोद भरचौ सो हेरि कै जमुना मैं अक्रूर ।।१५८।।

सवैया ।।

छाडि चले बृज को मन मोहन मोह सो सग सषी गन धाए ।।
यो कहि गोपिनि कान्ह कुमार सौं मागी विदा जह छाकि जिवाए ।।
प्रीत को नातो रह्यौ तबलौ जबलौ रहे श्रीबन माहि लुभाए ।।
नातौ भयो तुमसो हरि हीन जबै मथुरा की जमीन मै आए ।।१५९।।

दोहा ।।

कवि की रही सरस्वती वृदावन मे छाय ।
नीठि नीठि कर देत है नदहि वृज पहुचाय ।।१६०।।

नदजी मथुरा बाहिर डेरा किए बलभद्रजी श्रीकृष्ण जी सषनि सहित मथुरा देषिबे गए ।।

छंद पद्धरी ॥

मधुपुर प्रवेस किय नंदलाल, बलभद्र वीर संग ग्वालवाल ॥
तिय चढी अटन सभ लषति स्याम, छवि देषि छकी कई कहै काम ॥
पुन रजक कस को मिल्यौ जात, नहि दिये वसन किय तासु घात ॥
जिन जनक सुता को दिय कलक, तहि मुक्ति दई मोहन निसंक ॥
हरि वायक दरजी सो सिवाय, पैन्हे सु आप गोपन पैन्हाय ॥
तहि मुक्ति मजूरी कान्ह दीन, घर गए सुदामा के प्रवीन ॥
उन पुहुप माल दीनी वनाय, मग जात कूवरी मिली आय ॥
जो प्रथम जन्म सुपनषानाम, तप करतिनि पायौ दरस स्याम ॥ १६१॥

तासौ लिय चदन नंदलाल, कूवर गवाय दिय छवि विसाल ॥
मुहँ माग्यौ वर तिहि दिय मुरारि, धनु सत्र तोर कर दियौ डारि ॥
कोदडपाल के किये घात, वल भयो कान्ह को अति विष्यात ॥
वलदेव कृष्ण जुत नद पास, वसि रहे रजनि पुनिभौ उजास ॥
निसि कस सपन देषे मलीन, निज अग लष्यौ उतमग हीन ॥
भौ भोर भोजपति रगभूमि, आयौ समल्ल अनि कोप झूमि ॥
तह पटह दुंदुभी को निनाद, सब करत मल्ल जय जय विवाद ॥
गज राषि कुवलयापीड द्वार, तब कह्यौ बुलावो द्वै कुमार ॥१६२॥

नंद जी आदि गोपनि सहित वलदेवजी श्री कृष्ण जी द्वार पै आए तब महावत सों कह्यौ हाथी दूर कर तब महावत श्री कृष्ण की ओर हाथी चलायो तहा महावत समेत हाथी कुं मारि रंग भूमि मे आए ॥

दोहा ॥

मारि कुवलयापीड गज रग भूमि मे आय ।
भासत हैं मन कस के काल रूप द्वै भाय ॥१६३॥

अथ मल्ल जुद्ध ॥

सवैया ॥

रग मही मे अनग सो मोहन मल्ल के सगर माहिं प्रवीनौ ॥
दाव वचावत लावत है छिन ही महि दूर चनूर को कीनौ ॥
रोम सों तोसल को जु हत्यौ सलभौ कर लागत प्रान विहीनौ ।
मुष्टिक कूट सो जूटि कै जग भली विधि मारि हली जम लीनौ ॥

गज बेंडी वाहरोय एक हाथी मोती चूर,
रगाधर क ठौग लहय पोलक सहै ॥
बाहु बली बद सवी बद औ अगिल बद,
फितीक क मूराछिटिकाहू धो पकास है ॥
झझा बद भीतरी दुलग असवारी वद,
कालाजगी चपरास लाय झेटक सहै ॥
हली कान्ह वली इनि दावनि सो मल्लनि,
को मारिकै पसारि दियौ जग मे सुजस है ॥१६५॥

मारे परे जब मल्ल अपारे मे कौन चहै वलवीर वकारयौ ॥
वाधि रयौ वसुदेव व्रजेस कौं रोस सौं आसुर ग्रंसं उचारयौ ॥
वद करौ सु नि नद को कानलवै हरि मातुल कौं जु पछारयौ ॥
आय परयौ महि कस परद मचान तें कान्ह सिचान कौ मारयौ ॥१६६॥

इति कस वध ॥

दोहा ॥

विदा देत हरि नद को जो दुप उपज्यौ आय ।
पाहन तें ह्वै कठिन हिय तासौ वरन्यौ जाय ॥१६७॥

हरि विन नद निहारि व्रज वाढ्यौ विरह अपार ।
मोहन के गुन गांवही निसदिन ग्वारि गुवार ॥१६८॥

भामै सुप नहि विरह मे कहत प्रवीन सवाद ।
गूढौ एकहि को लगै एकहि होत प्रसाद ॥१६९॥

कवित्त ॥

कवहू को भए बसुदेव हू को सुत कान्ह
ज्ञानी गर्ग कह्यौ ताकी वानी लै भगरते ॥
भई जा भवानी जग जानी बात अवर मे
जायकै वपानी दोऊ सापि को उचरते ॥
बनै फेर फार नहि जमुना के पार तुम रहै
चोकीदार आठौ जाम चौकी करते ॥
जाय न परद जहा परे तुम वद ऐसें
कहते ज्यौ नद वसुदेव भूठे परते ॥१७०॥

दोहा ॥

सुत साचो हरि नद को रसना रसहि लुभाइ ।
रह्यौ न भावै अत्र मही भोग मही कौ पाइ ॥१७१॥

कवित्त ॥

कब हू को मोद भरे गोद आवे जसुदा के
माषन को मागे कबं रोकि कें मथानी है ॥
बछरा चरावें चारु मुरली बजावें हरि
गोधन को गावें आछी काछनी सुहानो है ॥
मोर को मुकट कटि राजे पीत पट
कर लीने है लकुट अति सोभा सरसानी है॥
कान्ह की जवानी नहिं जात है बषानी
बुध सुधा रस सानी बृज लीला में बिकानी हैं ॥१७२॥

सवैयो ॥

आगन में तुलसी नरपें रुचि सो कबही नही साधुन जोहे ॥
तीरथ के नहिं तीर तके हरि की प्रतिमा लषि कें नही मोहे ॥
दासपना सपना में नही मन आनें नही जम को पटको हें ॥
कान मे कान्ह कथा न परीतो बृथा जग जीवन जीवन को हें ॥१७३॥

हमारो कियो रामायन सार ताको ॥

कवित्त ॥

तुलसी को सेवन प्रसाद को न जेंवन
है जाके अग नाहिं हरिदासन को बानो है ॥
धरम को नाम नही कहे भुप राम नही
कबहू न काहें काउ दिवावें एक दानो है ॥
साधुन को सग तजि सग ले असाधुन को
चतुर कहावें सोचि देषें तें दिवानो है ॥
कथा को न श्रवन भवन ताके भूतन को
समन के दूत को रमन ठिकानो है ॥१७४॥
फाका काठें भाई भूप काढति जुगाई गाम
चून वाढ्यो चमू में न दादनी चुकाई ॥
एक हू न वाम बनवाम में कपाम को है
रेसमी कहा तें चीर चादरि सुहाई है ॥
एसेई कसाला मे परी है लक पाना पुल्यो
वाभन को ताला दत आरनि लगाई है ॥
तीन लोक त्राता भक्ति दीजिए लपन भ्राता
तागा काई दूसगे न दाता रघुराई हैं ॥१७५॥

गज वेडी वाहरीय एक हाथी मोती चूर,
रगाघर म ठीग लहथ पोलक सहै ।।
वाहु वनी वद सवी वद श्रौ श्रगिल वद,
फितोक म मूराछिटिकाहू घो पकास है ।।
भभा वद भीतरी दुलग श्रसवारी वद,
कालाजगी चपरास लाय भेटक सहै ।।
हली कान्ह वली इनि दावनि सो मल्लनि,
को मारिकै पमारि दियौ जग मे सुजस है ।।१६५।।

मारे परे जव मल्ल श्रपारे मे कौन चहै वलवीर वकारयौ ।।
वाधि रयौ वनुदेव श्रजेम कौ रोस सौं श्रासुर ग्रंमे उचारयौ ।।
वद करौ सु नि नद को कानतवै हरि मातुल को जु पछारयौ ।।
श्राय परयो महि कस परद मचान तै कान्ह सिचान को मारयौ ।।१६६।।

इति कस वध ।।

दाहा ।।

विदा देत हरि नद को जो दुप उपज्यौ श्राय ।
पाहन तै हूं कठिन हिय तामो वरन्यो जाय ।।१६७।।

हरि विन नद निहारि व्रज वाढ्यौ विरह श्रपार ।
मोहन के गुन गाँवही निसदिन ग्वारि गुवार ।।१६८।।

भामे सुप नहि विरह मे कहत प्रवीन सवाद ।
गूढौ एकहि को लगै एकहि होत प्रसाद ।।१६६।।

कवित्त ।।

कवहू को भए वसुदेव हू को सुत कान्ह
ज्ञानी गर्ग कह्यौ तावी वानी लै भगरते ।।
भई जा मवानी जग जानी वात श्रवर मे
जायकै वपानो दोऊ सापि को उचरते ।।
वनै फेर फार नहि जमुना के पार तुम रहै
चोकीदार श्राठौ जाम चौकी करते ।।
जाय न परद जहा परे तुम वद ऐसे
कहते ज्यो नद वसुदेव झूठे परते ।।१७०।।

दोहा ।।

सुत माचो हरि नद को रमना रमहि लुभाइ ।
रह्यौ न भावै श्रव मही भोग मही को पाइ ।।१७१।।

कवित्त ॥

कब ही को मोद भरे गोद आवैं जसुदा के
माषन को मागे कबै रोकि कै मथानी है ॥
बछरा चरावैं चारु मुरली बजावैं हरि
गोधन को गावैं आछी काछनी सुहानी है ॥
मोर को मुकट कटि राजे पीत पट
कर लीने है लकुट अति सोभा सरसानी है॥
कान्ह की जवानी नहि जात हैं बषानी
बुध सुधा रस सानी बृज लीला मैं बिकानी है ॥१७२॥

सवैयो ॥

आगन मैं तुलसी नरषै रुचि सौ कबही नही साधुन जोहै ॥
तीरथ व नहि तीर तकै हरि की प्रतिमा लषि कै नही मोहै ॥
दासपना सपना मै नही मन आनै नही जम को पटको हैं ॥
कान मे कान्ह कथा न परीतो बृथा जग जीवन जीवन को हैं ॥१७३॥

हमारो कियो रामायन सार ताको ॥

कवित्त ॥

तुलसी को सेवन प्रसाद को न जैवन
है जाके अग नाहि हरिदासन को बानो है ॥
धरम को नाम नहीं कहै मुष राम नही
कबहू न काहुँ काउ दिवावै एक दानो है ॥
साधुन को सग तजि सग लै असाधुन को
चतुर कहावै सोचि देषें त दिवानों है ॥
कथा को न श्रवन भवन ताकै भूतन को
समन के दूत को रमन ठिकानो है ॥१७४॥
फाका काढे भाई भूप काढति लुगाई राम
चून बाढ्यो चमू मै न दादनी चुकाई ॥
एक हू न बास बनवास मे कपास को है
रेसमी वहा ते चीर चादरि सुहाई है ॥
एसेई कसाला मे परी है लक पाला पुल्यो
बाभन को ताला देत बारनि लगाई है ॥
तीन लोक त्राता भक्ति दीजिए लषन भ्राता

दोहा ।।

कह्यौ दसम अनुसार क्रम घटि वढि कैं कहुँ कौन।
जहा वचन जाको वनै लेहैं लाय प्रवीन ।।१७६।।
मोहन लीला ग्रन्थ को पढै सुनै जो कोय।
सब सुप अवनी मैं मिलै सपा कान्ह को होय ।।१७७।।
गगा तट जमुना निकट तुलसी डिग हरि धाम।
पढै सुनै ताको सदा पूरन ह्वै सब काम ।।१७८।।
रास राति हर जन्म दिन यामैं पढै जु कोय।
सुनै पाठ ताके हिए मोहन परगट होय ।।१७९।।
माली दरजी कौं दई मुक्ति मजूरी कान।
प्रेम भक्ति दयौ मैं नही चाहत हा निरवान ।।१८०।।
मोहन लीला ग्रन्थ रचि मैं माग्यौ ललचाय।
जहा कहू मो जन्म ह्वै यह न भूलो हरिराय ।।१८१।।
मोहन लीला को पढै सुनै नसै सब रोग।
लागै मन गोविद मैं ग्रनायाम लहि जोग ।।१८२।।
तुलसी को सेवन मिलै वृन्दावन कौ वास।
जमुना के तट मैं रहौ ह्वै राधा हरिदास ।।१८३।।
परगन्ना गोर ग्रा जका है सारनि सरकार।
गाव चैंनपुर मैं बसैं हरि कवि को परवार ।।१८४।।
मारवाड मैं कृष्णगढ कियो सुकवि सुपवास।
मोहन लीला ग्रथ को तहा कियौ परकास ।।१८५।।
सुकवि रामधन को तनय हरि कवि है तहँ नाम।
ग्रगहन वदि एकादसी वरन्यौ गुन घनस्याम ।।१८६।।
राम हुतासन गज ससी सवत माहि घटाय।
सेप रहै सो ग्रथ कौ गन वत्सर ठहराय ।।१८७।।

इति हरिचरणदास कृत मोहन लीला सपूर्ण ।।१।।
मीती श्रावण वदि १० शनिवारे सवत १८५६ का ।।२।।
।।लिपत कृष्णगढ मध्ये ।। शुभमस्तु

प्रतिलिपि कृत कृपाशकुर तिवारी अषाढ शुक्ल ६ सोमवार
सवत २०२८ ।। २८-६-७१